डाउन टू अर्थ

गंगा डेजियर

करीब 2500 किलोमीटर का सफर तय करने वाली जीवनदायिनी गंगा का अस्तित्व खतरे में

फरक्का एक यक्ष प्रश्न

मरघट में गंगा

नदियों को बीमार बनाते एसटीपी

संपादक : सुनिता नारायण, रिचर्ड महापात्रा, अनिल अश्वनी शर्मा, विवेक मिश्रा
डिजाइन : अजीत बजाज एवं विजयेंद्र प्रताप सिंह
चित्रांकन : तारिक अजीज

डाउन टू अर्थ
www.downtoearth.org.in

© सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरमेंट 2020

पुस्तक में प्रकाशित सामग्री का इस्तेमाल सहमति के बाद किया जा सकता है

सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरमेंट द्वारा प्रकाशित
41, तुगलकाबाद इंस्टीट्यूशनल एरिया,
नई दिल्ली 110062
फोन नंबर : **91-11-29955124, 29955125, 40616000**
फैक्स : **91-11-29955879**
ईमेल : **cse@cseindia.org**
वेबसाइट : **www.cseindia.org**

सुनीता नारायण

नदियों का संहार

जो समाज अपने सर्वाधिक कीमती प्राकृतिक खजाने- अपनी नदियों को खो देता है, वह समाज निश्चित रूप से अभिशप्त है। हमारी पीढ़ी अपनी नदियों को खो चुकी है।

ऐसे अनगिनत उदाहरण हैं कि किसी शहर का नाला कभी नदी होता था। आज की दिल्ली नजफगढ़ नाले को जानती है, जो शहर के कचरे को यमुना में लाकर छोड़ता है। लेकिन लोगों को यह नहीं मालूम कि इस नाले का स्रोत एक झील है, जो साहिबी नदी से जुड़ी थी। अब साहिबी भी खत्म हो गई और झील भी। लोगों के जेहन में सिर्फ एक नाला है, जिसमें पानी नहीं, केवल प्रदूषण बहता है। इससे भी बुरी बात यह है कि दिल्ली की पहाड़ियों के इर्द-गिर्द फैला नया गुड़गांव अपना मल-मूत्र इस नजफगढ़ झील में डाल रहा है।

लुधियाना का बूढ़ा नाला भी एक गंदे नाले में तब्दील हो गया है, गंदगी और गंध से सड़ता हुआ। बहुत समय नहीं हुआ, जब बूढ़ा एक दरिया था, एक नदी। इसमें निर्मल जल बहता था। केवल एक पीढ़ी के काल में ही इसका हाल और नाम बदल गया है।

मिठी नदी भी मुंबई को शर्मसार कर रही है। जब वर्ष 2005 में मुंबई शहर बाढ़ से डूबा, तब पता चला कि मिठी नाम का नाला अवरुद्ध हो गया है। यह नाला आज भी प्रदूषण और अतिक्रमण की चपेट में है। लेकिन मुंबई शहर को इस बात का आभास नहीं है कि मिठी शहर के लिए नहीं, अपितु यह शहर मिठी के लिए शर्म का कारण है। मुंबई के पास से निकालने वाला यह नाला कभी वास्तव में नदी हुआ करता था, नदी की तरह बहता था और नदी के तौर पर ही जाना जाता था। लेकिन वर्तमान में आधिकारिक पर्यावरण रिपोर्ट में भी यह नदी एक बरसाती नाले के रूप में दर्ज है। दिल्ली की तरह मुंबई ने भी एक ही पीढ़ी में अपनी नदी को खो दिया है।

लेकिन हम अचंभित क्यों हैं? हम अपनी नदियों से बहुत ही बेदर्दी से साफ पानी लेते हैं और बदले में उन्हें मल तथा औद्योगिक कचरे से भर देते हैं। हमारी कई नदियों के ऊपरी हिस्सों में बहाव ही नहीं है, क्योंकि हमने पानी से बिजली पैदा करने के लिए इसे रोक दिया है। इंजीनियरों-डिजाइनरों के पास नदी के प्राकृतिक बहाव के बारे में ऐसी कोई समझ नहीं है कि बिजली बनाने के लिए पानी का इस्तेमाल तभी किया जाएगा जब पर्यावरणीय और सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करने के बाद भी नदी में पर्याप्त पानी बचा हो। जब गंगा, यमुना, नर्मदा या कावेरी मैदानी क्षेत्र में पहुंचती हैं, हम सिंचाई और पेयजल के लिए पानी की एक-एक बूंद सोख लेते हैं। हम नदियों को चूस कर सूखा छोड़ देते हैं। नदियों को पूजते हुए भी हम उनमें कूड़ा-करकट, प्लास्टिक और न जाने क्या-क्या डाल देते हैं। हम यह सब करते हैं और फिर भी विश्वास है कि नदियां पूजा के लायक हैं। या इसका अर्थ यह है कि हम एक मरी हुई या मरणासन्न नदी की पूजा करते हैं, उनकी दुर्दशा को नजरंदाज करते हुए।

आज हमारी नदियां मर रही हैं- इनके कई हिस्सों में पानी में घुली हुई ऑक्सीजन की मात्रा शून्य है। इस कारण इनमें जीवन नहीं है। इनमें सिर्फ हमारा मल बहता है, ये हमारे मल-मूत्र को बहाने वाली नहरें हैं।

हमें यह संकल्प लेना चाहिए कि हम ऐसा नहीं होने देंगे। इसके लिए हमें पानी के इस्तेमाल और कचरे के निस्तारण के बीच के संबंध को जानना होगा, हमारे नल, फ्लश और नदी के बीच संबंध को पहचानना होगा। आज हमें अपने घरों में पानी मिल रहा है, हम कचरा पैदा कर रहे हैं और नदियों को मरता हुआ देख रहे हैं। ऐसा लगता है कि हम कुछ जानना ही नहीं चाहते।

क्या भारतीय समाज की जाति व्यवस्था के कारण ऐसा हो रहा है, जिसमें सफाई करना किसी और की जिम्मेदारी है? या फिर हमारी मौजूदा प्रशासनिक व्यवस्था के चलते ऐसा है, जहां पानी और कचरा प्रबंधन सरकार का काम है और उसमें भी निचले दर्जे के कर्मचारियों का? या फिर यह भारतीय समाज की उस मानसिकता के कारण है कि अमीर होकर व्यक्ति सब कुछ ठीक कर सकता है, कि पानी की कमी और कचरा तत्कालिक समस्याएं हैं, एक बार हम अमीर हुए नहीं कि हम आधारभूत ढांचे का विकास कर लेंगे और फिर पानी अपने आप बहने लगेगा तथा सड़ने वाला मल अपने आप गायब हो जाएगा?

इस दौर में समाधान भी मौजूद हैं। पहला, हमें पानी के उपयोग को संयमित करना होगा, ताकि दूषित जल कम निकले। हमें पानी की बर्बादी को रोकना ही होगा। दूसरा, हमें बारिश के पानी को सहेजना सीखना होगा- घरों और संस्थानों में बरसात के पानी का संग्रहण करना होगा, ताकि भूजल को रीचार्ज किया जा सके। हमें यह मांग भी जोर-शोर से उठानी होगी कि झील या तालाब को कचरे से न भर दिया जाए या निर्माण के लिए समाप्त न कर दिया जाए। तीसरा, हमें शहरों में कचरा प्रबंधन की जरूरत को समझना होगा तथा इस बात की निगरानी करनी होगी कि सीवेज और कचरा कहां निस्तारित हो रहा है। जब हम यह समझ लेंगे, तब हम यह मांग कर सकेंगे कि कचरे का पुनर्चक्रण हो तथा गंदे पानी को साफ कर दोबारा इस्तेमाल किया जाए।

समय आ गया है जब हमें अपनी नदियों के खोने पर आक्रोशित होना चाहिए। वरना हमारी पीढ़ी को न सिर्फ नदियों के खोने का अफसोस रहेगा बल्कि नदियों के सामूहिक संहार का अपराधी भी माना जाएगा। हमारे बच्चे यह नहीं जान पाएंगे कि नर्मदा, यमुना, कावेरी या दामोदर नदियां थीं। वे उन्हें सिर्फ गंदे नालों के रूप में ही जान सकेंगे।

sunita@cseindia.org @sunitanar

विषय सूची

नदी तंत्र

8 फरक्का एक यक्ष प्रश्न

16 नदियों से बेधड़क छीना जा रहा है उनका घर-आंगन

18 नमामि गंगे की कटती धारा

प्रदूषण

22 मरघट में गंगा

33 हे! गंगा

35 घूंट भर पीने लायक नहीं

37 कुंभ का गंदाजल

39 केंद्र की उलटी धारा

स्टोरी को पढ़ने के लिए क्लिक करें

नीति अनीति

41 नदीहंता प्रयास

43 विनाश की नई धारा

47 40 साल : डूबता समाज

49 बाढ़ अभिशप्त गंगा के मैदान

एन जी टी

52 अलकनंदा : जान हथेली पर

54 प्रदूषण हुआ तो भरेंगे दस लाख

56 नदियों को बीमार बनाते एसटीपी

58 मॉनसून में ठप एसटीपी

60 बिहार की गंगा : ढो रही 74 फीसदी सीवेज

चुनौती अपार

आरंभ

गंगा : रंग बदला, रंगत नहीं

विवेक मिश्रा

भारत की एक बड़ी शहरी और ग्रामीण आबादी को जीवन, जैव-विविधता और उद्यम का भरोसा देने वाली राष्ट्रीय नदी गंगा के अस्तित्व पर ही अब बहस चल रही है। गंगा को राजनीति के लिए वोट बैंक बनाने वाले राजनीतिक दलों की नीयत साफ नहीं है और यही कारण है कि गंगा के मुख्यधारा की एक बूंद भी साफ नहीं रह गई है। कोविड-काल में जब आबादी के सिकुड़ने और गतिविधियों के रुकने का दौर आया तो गंगा ने भी कुछ बदलाव महसूस किए, इस बदलाव को अंत में वैज्ञानिकों ने यही कहा कि थोड़े समय के लिए गंगा के जल का रंग जरूर बदला लेकिन नदी की रंगत नहीं। यह मामला हिमालय से बल खाते हुए मैदानी भागों में आने वाली गंगा के सिर्फ 2500 किलोमीटर मुख्य धारा मार्ग का नहीं है। नदी अपनी घाटी की विशेषता से जानी जाती है।

जलग्रहण क्षेत्र के मामले में गंगा घाटी भारत की सबसे बड़ी नदी घाटी है। वर्ष 2011 जनगणना आंकड़ों के मुताबिक गंगा घाटी के दायरे में 16.5 करोड़ शहरी आबादी है, जबकि वर्ष 2001 की जनगणना के मुताबिक गंगा घाटी के दायरे में 12.67 करोड़ शहरी आबादी थी। 2001 के मुकाबले 2011 में शहरी आबादी का प्रतिशत 30 फीसदी बढ़ा है।

गंगा घाटी का 79 फीसदी हिस्सा भारत में ही पड़ता है। इस घाटी के दायरे में 11 राज्यों के 2014 कस्बे बसे हैं। गंगा घाटी राज्यों में उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, बिहार, पश्चिम बंगाल और दिल्ली शामिल हैं। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि गंगा में उद्योगों का 30 फीसदी और सीवेज का प्रदूषण करीब 70 फीसदी है।

गंगा की स्वच्छता के लिए चलाई जा रही सरकार की महात्वकांक्षी योजना 'नमामि गंगे' का प्रमुख जोर गंगा की मुख्य धारा वाले राज्य उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश, झारखंड, बिहार और पश्चिम बंगाल पर है। इनमें प्रमुख तौर पर 97 कस्बे शामिल किए गए हैं जो कि गंगा की मुख्य धारा के दायरे में हैं। वहीं, गंगा के 21 शहरों की आबादी जिसके पास स्वच्छता प्रणाली जैसे सेप्टिक टैंक, पिट लैट्रिन (करीब 60 फीसदी) मौजूद हैं, वह सभी सीवर कनेक्शन की सुविधा से अभी काफी दूर हैं।

नमामि गंगे योजना के मुताबिक गंगा घाटी के ज्यादातर शहरों में (करीब 99 फीसदी) शौचालय उपलब्ध हैं लेकिन सिर्फ 37 फीसदी ही आबादी है जो ठीक से मल का प्रबंधन करती है। यह भी गौर करने लायक है कि गंगा घाटी में एक भी ऐसा शहर नहीं हो जो पूरी तरह से सीवर लाइन से जुड़ा हो। घाटी में मौजूद ज्यादातर घर, संस्थाएं, व्यावसायिक भवन और सार्वजनिक व सामुदायिक शौचालय ऑनसाइट सैनिटेशन सिस्टम यानी मौके पर मौजूद होने वाली स्वच्छता प्रणालियों से ही काम चलाते हैं।

यहां तक कि मल कीचड़ को एक निश्चित जगह पर फेंका जा सके इसके लिए एक भी तय साइट नहीं है, जिसके कारण ज्यादातर मल खुली नालियों, नालों और मैदानों में जाता है, जो कि आखिरकार गंगा को ही प्रदूषित कर रहा है।

केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (सीपीसीबी) के मुताबिक गंगा की मुख्य धारा में प्रतिदिन 10,500 मिलियन लीटर प्रति दिन प्रदूषित पानी गिरता है, जिसके कारण बॉयोकेमिकल ऑक्सीजन डिमांड (बीओडी) का बोझ 350 से 450 टन प्रतिदिन पड़ता है। वहीं, फीकल कॉलीफोर्म का स्तर भी चिंताजनक पाया गया है।

गंगा में प्रदूषण की रोकथाम के लिए निगरानी पर काफी जोर दिया जाता है। लेकिन कोविड-19 लॉकडाउन अवधि (25 मार्च से 31 मई, 2020) के बीच डाउन टू अर्थ की पड़ताल में पाया गया कि मशीनों के सहारे प्रदूषण के लिए की जाने वाली निगरानी के आंकड़े महज छलावा हैं। भारत में कोविड-19 से बचाव के लिए लगाए गए लॉकडाउन के दौरान उत्तराखंड से लेकर उत्तर प्रदेश तक आम लोगों की राय यह बनी हुई थी कि गंगा नदी का प्रदूषण काफी ज्यादा साफ हो गया है। इस आम राय और दावे को कैसे जांचा जा सकता था क्योंकि सीपीसीबी को लॉकडाउन की अवधि के दौरान 22 अप्रैल, 2020 को यह नहीं मालूम था कि 20 जनवरी, 2020 के बाद से गंगा बहाव के अहम हिस्सों में वाकई कोई बदलाव आया है या नहीं। लॉकडाउन के दर्मियान गंगा नदी में प्रदूषण के विभिन्न मात्रक बताने वाले कुछ लाइव पेज पर गंगा नदी प्रदूषण आंकड़ों को जांचने और परखने की कोशिश की गई।

सबसे पहले पाया गया कि नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल (एनजीटी) के 27 जुलाई, 2018 के आदेश का पालन करते हुए 2019 में "सुटेबिलिटी ऑफ रिवर गंगा" नाम का एक ऑनलाइन पेज बनाया था, जिसमें राज्यों की तरफ से प्रत्येक महीने उपलब्ध कराए जाने वाले विभिन्न स्थानों से नदी के नमूने की जांच रिपोर्ट के आंकड़ों को गंगा के बहाव क्षेत्र स्थान वाले नक्शे में प्रदर्शित किया जाता है। लेकिन 22 अप्रैल, 2020 को पेज पर नक्शा यह बता रहा था कि अंतिम अपडेट 21 जनवरी, 2020 को किया गया। यानी तीन महीने तक कोई अपडेट नहीं।

लॉकडाउन में गंगा साफ हुई है या नहीं। यह जानने के लिए सुटेबिलिटी ऑफ रिवर गंगा के अलावा रीयल टाइम मॉनिटरिंग आंकड़ों को भी देखा गया। यह आंकड़े भी जांच में दुरुस्त नहीं मिले। करीब दस से ज्यादा मानकों पर रीयल टाइम आंकड़ों को गंगा के विविध बिंदुओं को जांचना था। हालांकि सभी बिंदुओं पर आंकड़े ही उपलब्ध नहीं हैं। यहां तक कि कई आंकड़े बिना किसी बदलाव के कई दिनों तक जस का तस कई स्टेशनों पर दिखाई दे रहे हैं। गंगा प्रदूषण की जानकारी देने वाले यह उपलब्ध आंकड़े क्या भरोसे के लायक हैं? दरअसल ज्यादातर कॉलम में भ्रामक आंकड़े दिए जा रहे है। जैसे नदी का जलस्तर पश्चिम बंगाल के एक स्टेशन पर 269 मीटर बताया जा रहा तो कहीं जीरो मीटर। इसी तरह जलस्तर के कारण अन्य आंकड़ों की गुणवत्ता पर भी असर पड़ता है।

यमुना जिए अभियान के संयोजक मनोज मिश्रा ने बताया कि रीयल टाइम आंकड़े काफी भ्रामक हैं और भरोसे लायक नहीं हैं। गंगा नदी की गहराई कहीं भी 150 फीट तक नहीं हो सकती। इसके अलावा कहीं भी आंकड़ों का कोई विश्लेषण सीपीसीबी ने नहीं किया है। न ही तारीख है और न ही कोई समय। इन आंकड़ों पर भरोसा नहीं किया जा सकता। अभी सिर्फ नदी को देखकर जो एहसास है वही बताया जा सकता है लेकिन बिना नमूनों की जांच रिपोर्ट के स्पष्ट तौर पर कुछ भी ठोस कहना मुश्किल है।

बहरहाल गंगा नदी के स्वच्छ होने का एहसास कई पर्यावरणविदों ने किया। और ऐसा वह कई वर्षों बाद औद्योगिक गतिविधियों, पूजा-पाठ, नहान-ध्यान के ठप होने व नदी के जलस्तर, उसके रंग-बहाव आदि को देखकर कह रहे हैं। क्या यह सही है ?

वर्ष 1892 में एक रसायन विज्ञानी एलेन हैजन ने पानी का रंग देखकर उसमें प्रदूषण स्तर पता लगाने का तरीका खोजा था। यह तरीका अब भी कहीं-कहीं उपयोग में है। इसे हैजन स्केल से नापते हैं, मसलन एकदम पारदर्शी दिखने वाले पानी 0 से बहुत गाढ़े रंग के पानी 500 तक पानी के प्रदूषण स्तर को बांटते हैं। हालांकि ऐसा कोई तरीका गंगा के लिए फिलहाल नहीं अपनाया गया है।

यह सच है कि दिखने में गंगा नदी में बदलाव हुआ है लेकिन यह बदलाव कैसा था? सेंटर फॉर साइंस एंड एनवॉयरमेंट के जल कार्यक्रम अधिकारी सुरेश रोहिला बताते हैं कि कृषि कार्यों में सबसे ज्यादा पानी की जरूरत होती है। अप्रैल कटाई का सीजन है और पानी की जरूरत नहीं है। फिर दिसंबर के बाद से लगातार बारिश हुई है और जो भी पानी नदियों में छोड़ा जा रहा है वह उसके पर्यावरणीय प्रवाह को बेहतर बना रहा है। पानी का ज्यादा बहाव स्वतः ही खुद सफाई का काम करती है। उन्होंने बताया कि नदी के साफ होने की यह भी वजह है कि इस वक्त लॉकडाउन के दौरान कोविड-19 से बचाव के लिए हम बार-बार हाथ धो रहे हैं। करीब पांच लोगों का परिवार 200 लीटर पानी तक इस्तेमाल कर रहा है। यह ग्रे वाटर है जो नालियों से नदियों में पहुंच रहा है और वहां ब्लैक वाटर को कम कर रहा है। यदि नमूनों में स्वच्छता की बात सामने आ भी रही है तो यह ध्यान रखना चाहिए कि एक गिलास और एक बाल्टी के पानी से लिए गए नमूनों में फर्क हो सकता है। अप्रैल में जुटाए गए आंकड़े और जिस वक्त नदी में बिल्कुल बहाव नहीं होता, पानी कम होता है और कृषि व उद्योग के लिए पानी का इस्तेमाल होता है तब लिए गए नमूनों में बिल्कुल फर्क आएगा।

हालांकि, लॉकडाउन खत्म होने के तीन महीने बाद केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (सीपीसीबी) ने रिपोर्ट जारी करके कहा कि कोरोनावायरस महामारी के प्रसार को कम करने के लिए लगाए गए लॉकडाउन के दौरान गंगा समेत भारत की प्रमुख नदियों के पानी की गुणवत्ता में खास सुधार नहीं हुआ। 16 सितंबर, 2020 को नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल (एनजीटी) को सौंपी गई सीपीसीबी की रिपोर्ट के मुताबिक, मार्च से अप्रैल के बीच देश की 19 प्रमुख नदियों के पानी की गुणवत्ता पर नजर रखी गई और इसकी तुलना की गई। एनजीटी ने सभी राज्यों व केंद्र शासित प्रदेशों को ऐसा करने को निर्देश दिया था ताकि सीवेज ट्रीटमेंट प्लांटों, एफ्लुएंट ट्रीटमेंट प्लांट और सेंट्रल एफ्लुएंट प्लांट के लिए कार्यान्वयन योजनाएं सुनिश्चित की जा सकें।

राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड और प्रदूषण नियंत्रण समितियों ने ब्यास, ब्रह्मपुत्र, बैतमी व ब्राह्मणी, कावेरी, चंबल, गंगा, घग्गर, गोदावरी, कृष्णा, महानदी, माही, नर्मदा, पेनर, साबरमती, सतलुज, स्वर्णरेखा, तापी और यमुना के पानी की गुणवत्ता का आकलन किया।

रिपोर्ट के अनुसार, मार्च में नदियों के पानी के कम से कम 387 और अप्रैल में 365 नमूने एकत्र किए गए। मार्च के दौरान 387 (77.26 प्रतिशत) निगरानी स्थानों में से कम से कम 299 में आउटडोर स्नान के लिए सूचीबद्ध मापदंडों का पालन किया। वहीं अप्रैल में 365 (75.89 प्रतिशत) स्थानों में से 277 में मापदंडों का अनुपालन किया गया था।

रिपोर्ट के अनुसार, उद्योग बंद होने, बाहरी स्नान और कपड़ा धोने जैसी गतिविधियों में कमी के कारण ब्राह्मणी, ब्रह्मपुत्र, कावेरी, गोदावरी, कृष्णा, तापी और यमुना नदी में पानी की गुणवत्ता में सुधार देखा गया। दूसरी ओर ब्यास, चंबल, सतलुज, गंगा और स्वर्णरेखा में सीवेज का बहाव अधिक होने और पानी की मात्रा कम के कारण गुणवत्ता खराब हो गई।

रिपोर्ट में कहा गया है कि लॉकडाउन का असर दिल्ली से बहने वाली यमुना के 22 किलोमीटर के हिस्से पर ज्यादा साफ झलक रहा था। हालांकि पानी की गुणवत्ता में हुआ सुधार शहर में बेमौसम बारिश का नतीजा हो सकता है। नदी के पानी की गुणवत्ता का आकलन पीएच, घुलित ऑक्सीजन (डीओ), बायोकेमिकल ऑक्सीजन डिमांड (बीओडी) और फीकल कॉलीफॉर्म (एफसी) के मापदंडों के आधार पर किया गया। इसके परिणामों की तुलना पर्यावरण (संरक्षण) नियमों, 1986 के तहत अधिसूचित आउटडोर स्नान के लिए प्राथमिक जल गुणवत्ता मानदंडों से की गई थी।

स्पष्ट है कि गंगा की मुख्य धारा का ही ढंग से ख्याल नहीं रखा जा रहा है और प्रदूषण का बोझ ढोते-ढोते गंगा अब थक चुकी है।

मुर्शीदाबाद में कटाव रोकने के उपाय जैसे गनी बैग और बांस के बने पॉक्युपायन विफल रहे हैं। चूंकि बैराज से मुर्शीदाबाद में छोड़े गए पानी में गाद बहुत कम है, इसकी कटाव क्षमता अधिक है

आरती कुमार-राव

फरक्का एक यक्ष प्रश्न

गंगा पर बना फरक्का बैराज हमेशा बाढ़ के कारण चर्चा में रहता है। बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार संवैधानिक पद पर बैठे संभवत: पहले ऐसे नेता हैं, जो पूर्व में किसी बैराज या बांध को हटाने की मांग उठा चुके हैं। पटना से फरक्का तक का सफर तय कर करते हुए अर्चना यादव ने गंगा, बाढ़ और बैराज से जुड़ी समस्याओं की गहराई से पड़ताल की है

फ़रक्का बैराज के लिए विवाद कोई नई बात नहीं है। गंगा नदी के पश्चिम बंगाल में प्रवेश करते ही उस पर बने इस बैराज पर उंगली तभी उठ गई थी जब इसका निर्माण शुरू भी नहीं हुआ था। 1950 के दशक में पश्चिम बंगाल के दूरदर्शी इंजीनियर कपिल भट्टाचार्य ने चेतावनी दी थी कि फरक्का के कारण बंगाल के मालदा व मुर्शीदाबाद के साथ बिहार के पटना, बरौनी, मुंगेर, भागलपुर और पूर्णिया हर साल पानी में डूबेंगे। भट्टाचार्य का तर्क था कि फरक्का बैराज से पैदा हुई रुकावट के कारण गंगा की गति धीमी हो जाएगी और पानी में बहकर आई गाद गंगा के तल में जमने लगेगी, जिससे गंगा उथली होने लगेगी। जैसे-जैसे गंगा उथली होगी, वैसे-वैसे उसका बाढ़ का प्रभाव क्षेत्र भी बढ़ेगा।

भट्टाचार्य ने बैराज की जल निष्कासित करने की क्षमता पर भी सवाल खड़े किए। 1971 में जब यह बैराज बनकर तैयार हुआ ही था, बिहार में पिछली अर्धशताब्दी की सबसे बड़ी बाढ़ आई। बिहार के सामाजिक कार्यकर्ता रंजीव और पत्रकार हेमंत ने अपनी किताब 'जब नदी बंधी' में लिखा है, "उस वर्ष फरक्का बैराज अपने डिजाइन डिस्चार्ज के अनुकूल 27 लाख घनसेक जल प्रवाह भी निष्कासित नहीं कर सका। उस वर्ष मात्र 23 लाख घनसेक जल प्रवाह का निष्कासन फरक्का बांध कर सका।"

फिर 2016 में बिहार में पिछले दशक की सबसे बड़ी बाढ़ आई। पटना जिले में गांधीघाट और हाथीदा और भागलपुर मे गंगा के जलस्तर के पिछले रिकॉर्ड टूट गए। लगभग 250 जानें गईं और 31 जिले प्रभावित हुए। बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी से मुलाकात कर फरक्का को हटाने की मांग कर डाली। आज बिहार सरकार मानो भट्टाचार्य की कही हुई हर बात दोहरा रही है। नीतीश कुमार का कहना है कि गंगा उथली हो गई है और पानी को निकास देने में पहले जैसी समर्थ नहीं रह गई है। इसलिए जब तक गंगा में जमी गाद नहीं निकाली जाएगी तब तक बिहार में लगभग हर साल आने वाली बाढ़ का सिलसिला नहीं थमेगा। गंगा के किनारे रहने वाले और नदी पर शोध करने वाले अधिकतर लोग मानते हैं कि फरक्का इसकी एक वजह है, पर फरक्का ही एक वजह है, ऐसा नहीं है (इस पर बाद में चर्चा करेंगे)।

क्या हुआ था 2016 की बाढ़ में?

बिहार के जल संसाधन विभाग के अनुसार 21 अगस्त को पटना में भारी बाढ़ आई थी, जिसमें पटना का जलप्रवाह 32 लाख घनसेक नापा गया था। यह एक रिकॉर्ड था, वो भी ऐसे समय में जब बिहार में सामान्य से कम बारिश हुई थी। इस जल प्रवाह में एक बड़ा हिस्सा सोन नदी पर बने बाणसागर बांध से अचानक छोड़ा गया 5 लाख घनसेक पानी और इसी नदी की एक सहायक नदी उत्तर कोयल से आया 11.69 लाख घनसेक पानी का था। अगर पानी अचानक न छोड़ा जाता तो शायद इतनी भीषण बाढ़ न आती। पर बिहार सरकार की शिकायत है कि 21 अगस्त को आए उच्चतम प्रवाह को पटना से फरक्का तक की 370 किलोमीटर की दूरी तय करने में आठ दिन लग गए। जबकि बक्सर से पटना तक की 143 किलोमीटर की दूरी तय करने में पानी को केवल 4 घंटे ही लगते हैं।

गाद का सैलाब

गंगा बिहार के ठीक मध्य से होकर गुजरती है। यह पश्चिम में बक्सर जिले से राज्य में प्रवेश करती है और भागलपुर तक 445 किलोमीटर की दूरी तय करती हुई झारखंड और फिर बंगाल में प्रवेश कर जाती है। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आईआईटी) कानपुर के प्रोफेसर राजीव सिन्हा ने हाल में गंगा का हवाई सर्वे किया है। वह बताते हैं, "गाद का जमाव सचमुच में बहुत ज्यादा है। यह अविश्वसनीय है!" सिन्हा गंगा में गाद की समस्या का अध्ययन करने के लिए बिहार सरकार द्वारा गठित विशेषज्ञ दल के सदस्य हैं।

बिहार में प्रवेश करने के तुरंत बाद गंगा 10-12 किलोमीटर चौड़े इलाके में फैल जाती है। नदी के बीच में बड़े-बड़े स्थायी टापू बन गए हैं। बिहार के जल संसाधन विभाग के सूत्रों के अनुसार, गैर बरसाती मौसम में अधिकतर स्थानों पर नब्बे के दशक से पहले गंगा की गहराई 9-10 मीटर हुआ करती थी, जो अब घटकर 4-6 मीटर रह गई है। गाद और फरक्का पर जब *डाउन टू अर्थ* ने केंद्रीय जल आयोग, गंगा बाढ़ नियंत्रण आयोग और केंद्रीय जल संसाधन मंत्रालय से बात करनी चाही तो लगा जैसे नाव किसी गाद से पटी धारा में डाल दी हो। बात आगे ही नहीं बढ़ती थी, न कहीं से किसी प्रश्न का उत्तर मिला। बिहार राज्य आपदा प्रबंधन प्राधिकरण के उपाध्यक्ष व्यासजी कहते हैं, "केंद्रीय जल आयोग ने इसे सिरे से नकार दिया है। वह गाद की समस्या को मानने को तैयार ही नहीं है।"

फरक्का की वजह से इसके ठीक ऊपर और नीचे पश्चिम बंगाल में गंगा का स्वरूप किस तरह बदला है, इस पर वैज्ञानिकों ने काफी कुछ लिखा है। पर बिहार में फरक्का के प्रभावों की जानकारी गंगा से जुड़े लोगों से ही मिलती है। और नदी को मछुआरों और मल्लाहों से बेहतर कौन जानता है?

मुंगेर जिले में गंगा किनारे मछुआरों की एक बड़ी सी बस्ती है, सैनी टोला। इसके निवासी 60 साल के नारायण सैनी को वह दिन याद है जब गंगा में "30 से 40 हाथ" पानी होता था। "अब तो यह बस आठ से दस हाथ गहरी रह गई है।" उनके आसपास बैठे लोग बताते हैं कि पहले इतना बहाव था कि बस्ती के बीच तक कलकल ध्वनि सुनाई पड़ती थी। सैनी को कोई संदेह नहीं कि परिवर्तन की वजह फरक्का है। वह पूछते हैं "आप नाली में ईंटा रख दें तो नाली का बहाव रुकेगा कि नहीं?"

बात को और समझाने के लिए सैनी हमें नाव से गंगा के बीच ले जाते हैं। नदी मंद गति से बह रही है। वह सतह पर हो रही एक हल्की सी हरकत की तरफ इशारा करते हैं जो लहरों से भिन्न है। उन्होंने बताया, "ये देख रहे हैं। ये जो भरका उठ रहा है, इसका मतलब है यहां मिट्टी खंगल रही है। पहले खूब भरका उठता था।" जब नदी में बहाव होता है तो वह अपना तल खंगालती हुई गाद को बहा ले जाती है।

बाढ़, एक ठहरा हुआ मेहमान

उथली होने के साथ गंगा का स्वभाव भी बदला है। बिहार के बाढ़ मुक्ति अभियान के संयोजक दिनेश कुमार मिश्र लिखते हैं, "बरसात के मौसम में तो गंगा एक तरह से फरक्का में ठहर सी गई। इसका असर गंगा की सहायक धाराओं पर पड़ा जो नदी के दोनों किनारों पर आकर गंगा में समा जाती है। गंगा से उनके संगम स्थल पर भी मुहाने उसी तरह से बाधित हुए और बाढ़ों के समय उनमें भी पानी की समुचित निकासी नहीं हो पा रही थी।"

पिछले साल की बाढ़ में कुछ ऐसा ही हुआ। चूंकि गंगा का स्तर ऊंचा था, इसने पटना से लेकर कटिहार तक अपने में मिलने वाली सहायक नदियों—गंडक, बूढ़ी गंडक, कोसी, पुनपुन, किऊल-हरोहर—का बहाव देर तक पीछे धकेल दिया।

बदलती गंगा

फरक्का बैराज बनने के बाद बिहार और पश्चिम बंगाल में बाढ़ और नदी का कटाव बढ़ा है। सहायक नदियों द्वारा लाई गई गाद और गंगा में घटता जल प्रवाह समस्या को और गंभीर बनाते हैं

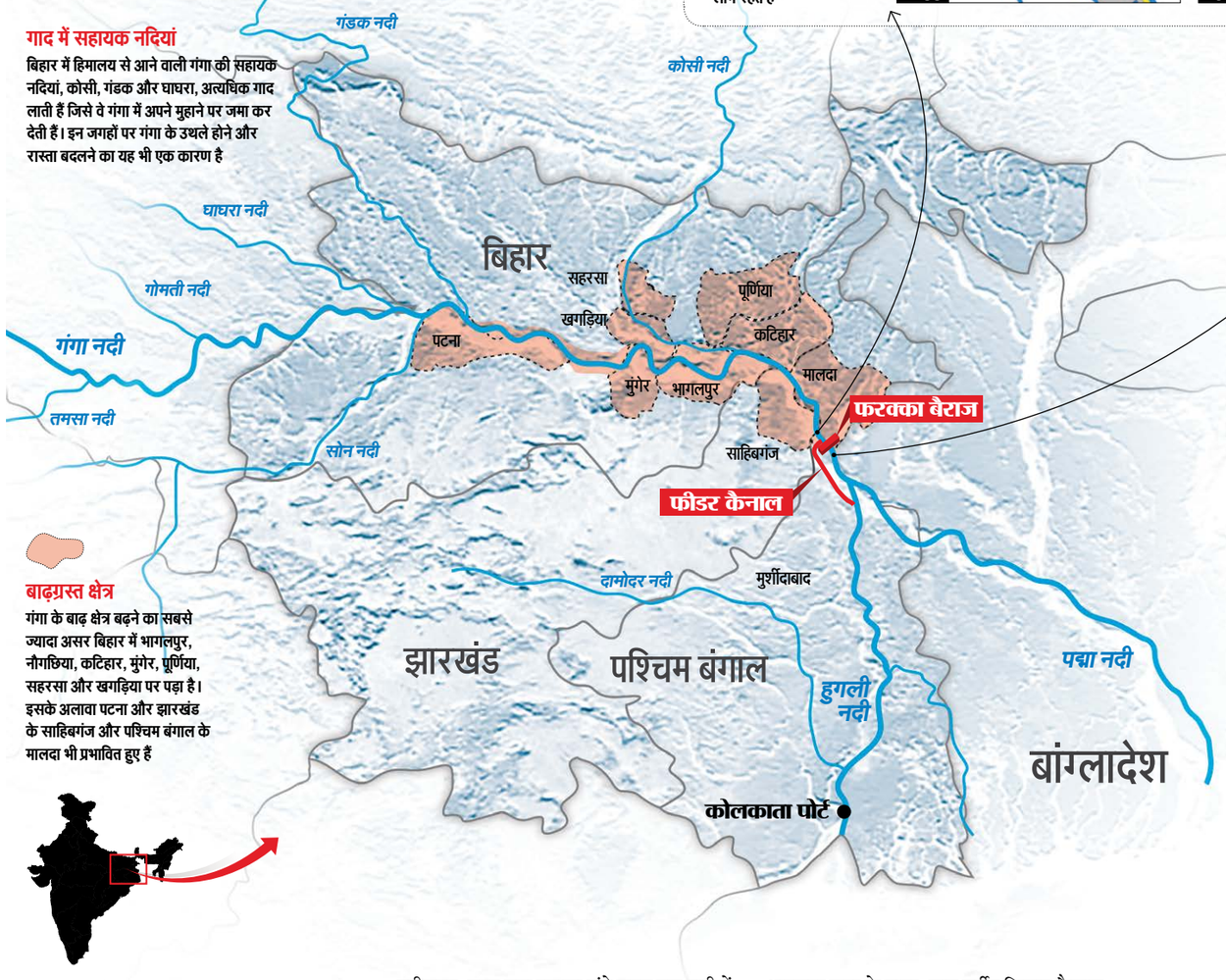

गाद में सहायक नदियां

बिहार में हिमालय से आने वाली गंगा की सहायक नदियां, कोसी, गंडक और घाघरा, अत्यधिक गाद लाती हैं जिसे वे गंगा में अपने मुहाने पर जमा कर देती हैं। इन जगहों पर गंगा के उथले होने और रास्ता बदलने का यह भी एक कारण है

बाढ़ग्रस्त क्षेत्र

गंगा के बाढ़ क्षेत्र बढ़ने का सबसे ज्यादा असर बिहार में भागलपुर, नौगछिया, कटिहार, मुंगेर, पूर्णिया, सहरसा और खगड़िया पर पड़ा है। इसके अलावा पटना और झारखंड के साहिबगंज और पश्चिम बंगाल के मालदा भी प्रभावित हुए हैं

मालदा

बैराज के ठीक पीछे गंगा ने बायीं तरफ़ फैलते हुए घुमावदार मोड़ लिया है। इसमें 4,000 हेक्टेयर से ज्यादा जमीन कट गई है और लाखों-लाख लोग विस्थापित हो गए हैं। अब नदी एक चौड़े क्षेत्र में फैल गयी है और इसके बीच में टापू उभर आए हैं जिन पर लगभग दो लाख विस्थापित लोग रहते हैं

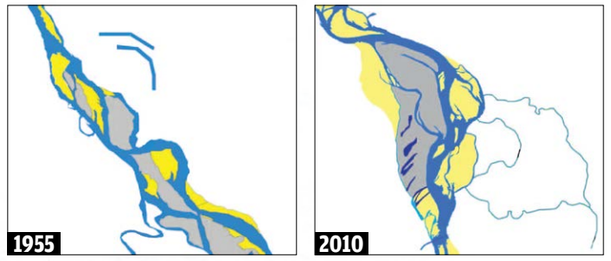

मुर्शीदाबाद

फरक्का से कुछ दूरी तक कटाव को रोकने के लिए तटबंध बना दिए गए हैं, जिसकी वजह से गंगा का फैलाव और कटाव और नीचे खिसक गया। यहां गंगा बायीं तरफ़ फैल गई है और कई धाराओं में बंट गई है। बीच में सैंड बार और टापू बन गए हैं। यहां भी भीषण कटाव हुआ है

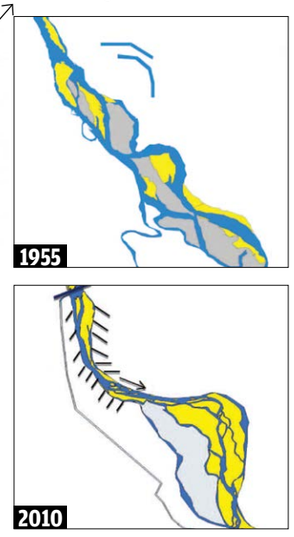

डीटीई/सीएसई डेटा सेंटर द्वारा तैयार
इंफोग्राफिक : राज कुमार सिंह | डेटा स्रोत : विभिन्न स्रोत
अन्य इंफोग्राफिक के लिए *www.downtoearth.org.in/infographics* जाएं।

इनसेट मैप स्रोत : राजीव सिन्हा & संतोष घोष (2012), 'अंडरस्टैंडिंग डायनामिक्स आफ लार्ज रिवर्स ऐडिड बाई सैटेलाइट रेमोट सेन्सिंग : अ केस स्टडी फ्रोम लोअर गंगा प्लेन्स, इंडिया', जीयोकार्टो इंटरनैशनल

नतीजतन, बहुत बड़ा इलाका लंबे समय तक पानी में डूबा रहा।

मुंगेर में पत्रकार कुमार कृष्णन बताते हैं कि पूर्वी बिहार में गंगा किनारे के इलाकों में पहले बाढ़ का पानी ठहरता नहीं था, हफ्ते दो हफ्ते में निकल जाता था। पर अब दो-तीन महीने रहता है, जिससे बरसात के मौसम में होने वाली फसल मारी जाती है। बगल के भागलपुर शहर के बाहर, साठ वर्षीय किसान कैलाश यादव कहते हैं, "पहले बाढ़ के बाद दाना छींट देते थे तो काफी मक्का हो जाता था। फिर उड़द और गेहूं भी कर लेते थे। पर अब साल में एक ही फसल होती है।" नदी यहां से तीन किलोमीटर दूर जा चुकी है, और आसपास के खेतों में चारे के लिए 'सुदान' घास उगाई हुई है।

बिन मछली सब सून

बाढ़ की खबर ज्यादा ध्यान आकर्षित करती है, पर फरक्का के दुष्परिणाम बाढ़ तक सीमित नहीं हैं। बिहार में मुंगेर से लेकर झारखंड के तक नारायण और योगेन्द्र सैनी समेत जितने भी मछुआरों से बात हुई, उन सभी का कहना है कि पहले गंगा में तमाम किस्म की मछलियां मिलती थीं, जैसे हिलसा, झींगा, पंगास, सौकची, कुर्सा, कठिया, गुल्ला, महसीर, कतला, रेहू, सिंघा, जो अब मुश्किल से ही दिखती हैं। हिलसा तो फरक्का के ऊपर लगभग लुप्त हो गई है। यह मछली प्रजनन के लिए समुद्र से नदी के मीठे पानी में जाती है। फरक्का ने हिलसा का रास्ता रोक दिया है। मछलियों के लुप्त होने के लिए यहां के निवासी बैराज के अलावा नदी किनारे बने ईंट के भट्टे, रेत खनन, प्रदूषण, गलत तरीके से मछली पकड़ने और विदेशी मछलियों को भी जिम्मेदार मानते हैं।

फरक्का के दुष्परिणामों को यहां सबसे पहले मछुआरों ने ही भांप लिया था। बिहार के गंगा मुक्ति आंदोलन के अनिल प्रकाश बताते हैं कि 35 साल पहले जब वह घूम-घूम कर मछुआरों को गंगा पर जमींदारों के कब्जे के विरुद्ध खड़ा कर रहे थे तो हर मछुआरा उनसे यही कहता था कि फरक्का को तुड़वाओ। उन्होंने बताया, "मैं सोचता था कि ये लोग ऐसा क्यों कह रहे हैं। अच्छा-खासा बैराज बनाया है। मछुआरों का कहना था कि फरक्का की वजह से गंगा में मछलियां खत्म हो रही हैं। बाद में भागलपुर विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक के एस बिलग्रामी और जे एस दत्ता मुंशी ने बताया कि मछुआरे ठीक कह रहे हैं। वे गंगा की परिस्थितिकी (इकॉलजी) पर शोध कर चुके थे।"

अनिल प्रकाश के मुताबिक, गंगा और उसकी सहायक नदियों में 80 प्रतिशत मछलियां समाप्त हो गईं। इसके साथ ही लाखों-लाख मछुआरे बेरोजगार हो गए। कहलगांव के योगेन्द्र सैनी बताते हैं कि उनकी कागजी टोला मछुआरा बस्ती से लगभग चालीस प्रतिशत लोग काम की तलाश में पलायन कर गए हैं। लोगों के अपने परंपरागत व्यवसाय से बेदखल होने का एक असर ये हुआ कि पूरे दियारा क्षेत्र में आपराधिक गतिविधियां बढ़ी हैं। मुंगेर में वकील और क्राइम संवाददाता चौंसठ साल के अवधेश कुमार कहते हैं, "जो लोग मछली पकड़ने और खेती पर आश्रित थे, वे अब शराब और चोरी-चकारी में लग गए हैं।"

गंगा मुक्ति आन्दोलन से जुड़े उदय कहते हैं, "नदी पर पहला हक मछुआरों का है। उसके बाद किसान और आस्थावानों का। मछुआरे जिस रूप में नदी को देखते हैं वह बिलकुल भिन्न है।" पर फरक्का पर आज की चर्चा में मछुआरों और किसानों की आवाज नहीं सुनाई देती।

जमीन निगलती गंगा

भागलपुर में लोगों का यह भी मानना है कि गंगा अब ज्यादा रफ्तार से अपना रास्ता बदल रही है, जिससे कटाव बढ़ा है। जब नदी उथली होती है तो फैलने लगती है और अपने किनारों पर दबाव डालती है। नीतीश कुमार का कहना है कि पिछले पांच सालों में "बिहार जैसे गरीब राज्य" को 1,058 करोड़ रुपए जमीन के कटाव और बाढ़ के तत्काल प्रभाव को रोकने पर खर्च करने पड़े हैं।

फरक्का के नजदीक कटाव और भी गंभीर है। पश्चिम बंगाल के मालदा जिले में नदी कई धाराओं में बंटकर 10-15 किलोमीटर चौड़े क्षेत्र में फैल गई है। बैराज की रुकावट से नदी का पानी पीछे की तरफ फैला है। यहां गंगा के दाहिने किनारे पर राजमहल की पथरीली पहाड़ियां पानी को रोकती हैं। अतः नदी के बाएं किनारे ने फैलते हुए एक बड़ा सा घुमाव लिया है। घुमाव लेने में इसने जमीन का एक बड़ा हिस्सा निगल लिया है और लगभग इतना ही बड़ा हिस्सा टापुओं के रूप में उगला भी है, जिन्हें यहां के लोग चार कहते हैं। नदी विशेषज्ञ कल्याण रुद्र ने फरक्का पर गहरा शोध किया है। उनकी 2004 की एक रिपोर्ट के अनुसार, 1979 और 2004 के बीच मालदा में 4,247 हेक्टेयर जमीन कट गई थी।

कलियाचक ब्लाक दो में कटाव से प्रभावित लोगों की समिति, गंगा भंगन प्रतिरोध एक्शन नागरिक कमिटी, के सचिव मुहम्मद बक्श पगला घाट पर बने तटबंध को दिखाते हुए बताते हैं कि यह आठवां "रिटायर्ड" तटबंध है। इससे पहले के सारे तटबंध एक-एक करके निगलती हुई गंगा 10 किलोमीटर दूर चली आई है। डर है कि यहां से कहीं गंगा अपने पुराने रास्ते से होकर न निकल

बंगाल के मालदा जिले में गंगा के बीच बने टापुओं पर करीब 40,000 बच्चों को टीकाकरण की सुविधा भी उपलब्ध नहीं है

भास्करज्योति गोस्वामी / सीएसई

अर्चना यादव / सीएसई

पटना में बन रहे 'गंगा पाथ' के निर्माण में अनुमति न होते हुए भी गंगा में मिट्टी डाल कर रास्ता भर दिया गया है। गंगा के किनारे इस तरह की छेड़खानी से भी नदी की सेहत बिगड़ी है

जाए। अगर ऐसा हुआ तो यह बैराज को बाईपास कर जाएगी। बक्श का अनुमान है कि मालदा में पांच से दस लाख लोग कटाव से प्रभावित हुए हैं। कुछ लोग तो 16 बार तक विस्थापित हो चुके हैं। किसी को कोई मुआवजा नहीं मिला। बक्श कहते हैं कि इनमें से आधे लोग तो बगल में बांग्लादेश के दिनाजपुर इलाके में पलायन कर गए हैं और करीब दो लाख लोग इन टापुओं पर रहते हैं।

ऐसे ही एक टापू हमीदपुर चार पर जानकी टोला गांव है। इसके निवासी राजेंद्र नाथ मंडल बताते हैं कि वह 1966 में पैदा हुए थे। यह साल महत्वपूर्ण है क्योंकि तब बैराज का निर्माण कार्य शुरू हुए चार साल हो चुके थे और शायद तभी से नदी का कटाव तीव्र हुआ होगा। पैदा होने के पहले क्षण से ही मंडल ने अपने आसपास तेजी से होता कटाव देखा है। उन्होंने बताया, "जब मैं पैदा हुआ, जमीन कट रही थी। मेरे पैदा होते ही मेरी मां मुझे लेकर उठ गई और नाव में बैठ गई।" मंडल के दादा के पास पंचानंदपुर में 135 बीघा जमीन थी, जो नदी में समा चुकी है। तीस-चालीस साल पहले पंचानंदपुर एक बड़ा व्यापार केंद्र था। मंडल वहां मिठाई की दुकान चलाते थे। जब नदी दुकान के पास पहुंची तो वह उस जगह को छोड़कर ससुराल चले गए। जब नदी वहां भी पहुंच गई तो वह 2003 में इस टापू पर आ गए। "तब यहां कोई नहीं रहता था। सब तरफ जंगल था। मैंने जंगल साफ करके धान बोना शुरू किया और दूसरों को सिखाया।" मंडल अब बंटाई पर ली हुई पांच एकड़ जमीन पर खेती करते हैं और मवेशी पालते हैं।

नागरिक कमिटी के अध्यक्ष तजमुल हक का कहना है कि समिति की कोशिशों से कम से कम हामीदपुर टापू पर स्कूल में अध्यापक और क्लिनिक में डॉक्टर तो आते हैं, बाकी के अधिकतर टापुओं पर स्कूल और क्लिनिक केवल नाम के हैं। उन्होंने कहा, "वहां लगभग चालीस हजार बच्चों को टीकाकरण की सहूलियत भी उपलब्ध नहीं है।"

बैराज के दुष्परिणामों का सिलसिला फरक्का पर आकर खत्म नहीं हो जाता। इससे नीचे मुर्शीदाबाद में भी भीषण कटाव हुआ है। क्योंकि फरक्का बैराज से गाद को छानकर पानी भागीरथी-हुगली में भेजा जाता है, इस पानी की कटाव क्षमता अधिक है। जो गाद फरक्का पर रुक जाती है वह गंगा-ब्रह्मपुत्र-मेघना डेल्टा के हिस्से की है। गाद के अभाव में डेल्टा समुद्र की भेंट चढ़ने लगते हैं। गंगा-ब्रह्मपुत्र-मेघना डेल्टा भी धीरे-धीरे समुद्र में समा रहा है। इसका एक कारण है ग्लोबल वार्मिंग

फरक्का के पीछे जमी गाद को निकालने के लिये जितने ट्रक चाहिए अगर उनकी कतार बनाई जाए तो यह कतार पृथ्वी के 126 चक्कर पूरे कर लेगी

की वजह से चढ़ता समुद्र का जल स्तर और दूसरा कारण है गाद की घटती मात्रा, जिसमें थोड़ा योगदान फरक्का का भी है।

बीमारी के अनेक कारण

गंगा के बदलते स्वरूप और इसके भयंकर परिणामों से इनकार नहीं किया जा सकता। पर सारा दोष फरक्का पर मढ़ना भी सही नहीं।

आईआईटी कानपुर के राजीव सिन्हा कहते हैं कि बिहार एक तो वैसे ही निचला इलाका है, जहां स्वभाविक रूप से गंगा में वेग घटने लगता है, ऊपर से पटना और फरक्का के बीच दुनिया में सबसे ज्यादा गाद लाने वाली नदियों में से तीन, कोसी, गंडक और घाघरा, यहां गंगा में मिलती हैं। इसलिए प्राकृतिक रूप से यहां गंगा में बहुत गाद आती है जो इन नदियों के मुहाने पर जमा हो जाती है।

गंगा के उथले होने का एक बड़ा कारण यह भी है कि इसमें पहले जैसा प्रवाह नहीं रहा जो गाद को बहाकर ले जाए। पिछले कुछ दशकों में गंगा और इसकी सहायक नदियों पर ढेरों बांध और बैराज बने हैं। गंगा जब बिहार में प्रवेश करती है तो इसका अपना पानी लगभग समाप्त हो चुका होता है। फिर मानसून में बारिश भी पहले की तरह नहीं होती। दक्षिण बिहार केंद्रीय विश्वविद्यालय के पर्यावरण विज्ञान केंद्र के विभागाध्यक्ष और क्लाइमेट मॉडलिंग के विशेषज्ञ प्रधान पार्थ सारथी बताते हैं कि गंगा के जलग्रहण क्षेत्र में दीर्घकालिक बारिश के दौर घटे हैं, जिसकी वजह से नदी में निरंतर प्रवाह नहीं रहता जो गाद को बहाने में सहायक है।

डॉल्फिन विशेषज्ञ और राष्ट्रीय गंगा नदी घाटी प्राधिकरण के विशेषज्ञ सदस्य रह चुके रविन्द्र कुमार सिन्हा ध्यान दिलाते हैं, "मानसून के बाद नदी में पानी हिमनद (ग्लेशियर) या भूगर्भ से आता है और भूगर्भ में पानी वेटलैंड से आता है। पर वेटलैंड को तो हमने खत्म कर दिया। इसलिए जलस्तर नीचे जा रहा है। जब जलस्तर गिर रहा है तो नदी को आप कैसे रीचार्ज करेंगे?"

सिन्हा का यह भी मानना है कि मध्य और पूर्वी हिमालय में जंगलों के कटने से वहां से निकलने वाली बिहार की नदियों में गाद बढ़ी है। सिन्हा ने कई बार छोटी नाव से गंगा की यात्रा की है। वह बताते हैं कि अस्सी के दशक तक गंगा के बाढ़ क्षेत्र में प्राकृतिक वनस्पति दिखाई देती थी जो अब खत्म हो गई है। वहां अब खेती हो रही है। नब्बे के दशक में बिल्डिंग बूम आया और जगह-जगह ईंट के भट्टे नदी किनारे बना दिए गए। रेत का खनन होने लगा। "इन सब का मिला जुला असर है कि गाद ज्यादा पैदा हो रही है। इसलिए बीमारी का कोई एक कारण नहीं, अनेक हैं।"

अर्चना यादव / सीएसई

साहिबगंज में गंगा की एक मरणासन्न धारा। नदी विशेषज्ञों का कहना है कि गंगा में जमती गाद का एक कारण नदी में घटता प्रवाह है जो गाद को बहा ले जाने में अक्षम है

गाद का साध

गाद को बहने ही नहीं, फैलने भी दिया जाए

नदी केवल बहता पानी नहीं है। गाद इसका अविभाज्य अंग है। गंगा और डॉल्फिन पर काफी शोध कर चुके जीव विज्ञानी रविन्द्र कुमार सिन्हा कहते हैं, "गाद के बिना तो नदियां मर जाएंगी। गाद नहीं होगी तो जैव-विविधता भी नहीं होगी।" गाद और रेत से बने टापुओं पर कई तरह के पक्षी और जलीय जीव रहते हैं। मछलियां जब धारा के विपरीत चलती हैं तो जरूरत पड़ने पर इन टापुओं के पीछे आकर रुकती हैं और यहां जमा सड़े जैविक पदार्थों को खाती हैं। गाद अपने साथ पोषक तत्वों को भी एक जगह से दूसरी जगह ले जाती है। रेत पानी को सोख कर सुरक्षित रखता है। कंकड़ पानी के प्रवाह में हलचल पैदा कर उसमें ऑक्सीजन घोलते हैं। अतः मछलियों के अंडे देने के लिए उपयुक्त जगह बनाते हैं। गाद जब बाढ़ के पानी के साथ आसपास के इलाके में फैलती है, तो उसमें निहित उर्वरक तत्त्व जमीन को उपजाऊ बनाते हैं।

गाद समस्या तब बन जाती है जब यह बह या फैल नहीं पाती और नदी के पेट में जमा होने लगती है, पर बड़े स्तर पर गाद को नदी से निकालना न तो आसान है और न ही वांछनीय। अव्वल तो इतनी सारी गाद निकालने के लिए बड़ी मात्रा में संसाधन जुटाने होंगे और अगर निकाल भी ली जाए तो किसी के पास कोई पुख्ता उपाय नहीं है कि इसे डालेंगे कहां। नदी विशेषज्ञ कलायन रुद्र के अनुसार, केवल फरक्का के पीछे जमी गाद निकालने के लिए जितने ट्रकों की जरूरत होगी उन्हें अगर कतार में खड़ा कर दिया जाए तो यह कतार पृथ्वी के 126 चक्कर पूरे कर लेगी। इस गाद को समुद्र तक ले जाने का खर्च भारत सरकार की सालाना आय का दोगुना होगा। यह अनुमान बारह साल पुराना है, तब से गाद और बढ़ चुकी है।

हाल में गंगा से गाद निकालने के लिए दिशानिर्देश तैयार करने के लिए बनी एम ए चितले समिति ने गाद निकालने को लेकर अत्यंत सावधानी बरतने की हिदायत दी है वर्ना इसके विपरीत परिणाम हो सकते हैं, जैसे किनारों का कटाव और पानी के स्तर में गिरावट। इस साल जमा की गई अपनी रिपोर्ट में चितले समिति ने कहा है कि गाद निकालने का काम सिर्फ कुछ ही जगहों पर और वो भी वैज्ञानिक जांच के बाद ही होना चाहिए।

इसलिए जब तत्कालीन केंद्रीय जलसंसाधन मंत्री कहती हैं कि जलमार्ग मंत्रालय नदियों की

तोड़ दिया जाए, या...

दोष फरक्का बैराज के डिजाइन का ही नहीं, इसके रखरखाव का भी है

फरक्का बैराज गंगा डेल्टा के शुरुआती छोर पर बना है। यहां से गंगा दो भागों में बंट जाती है। एक जो आगे जाकर भागीरथी और फिर हुगली कहलाती है, दूसरी जो बांग्लादेश में जा कर पद्मा कहलाती है। इस बैराज का निर्माण भागीरथी-हुगली नदी में प्रवाह बढ़ाकर कोलकाता पोर्ट को जिलाने के लिए किया गया था। योजना यह थी कि बैराज से 40,000 घनसेक पानी हुगली में छोड़ा जाएगा जो नदी की गाद को समुद्र तक धकेल कर इसे जहाजों की आवाजाही के लायक बनाए रखेगा। हालांकि इसमें कोई खास सफलता नहीं मिली।

यह बैराज 2.6 किलोमीटर लंबा है और इसके दाहिने छोर से 38 किलोमीटर लंबी नहर भागीरथी-हुगली में पानी ले जाती है। साउथ एशिया नेटवर्क ऑन डैम्स, रिवर्स एंड पीपल की परिणीता दांडेकर तो इसे बैराज भी नहीं मानतीं। उनका कहना है चूंकि इसके फाटक 15 मीटर से ऊंचे हैं और यह 87 मिलियन घन मीटर पानी रोक कर रखते हैं, इस लिहाज से यह एक विशाल बांध है। गाद को रास्ता देने के लिए बैराज में 24 अंदरूनी जलद्वार (अंडरस्लूस) हैं। पर नदी वैज्ञानिक राजीव सिन्हा का कहना है कि ये अंदरूनी जलद्वार गाद में धंस चुके हैं और इसके साथ ही बैराज की गाद को रास्ता देने की क्षमता खत्म हो चुकी है। फरक्का बैराज प्रोजेक्ट के जनरल मैनेजर ने यह कहते हुए बैराज पर टिप्पणी करने से मना कर दिया कि वह इसके लिए अधिकृत नहीं हैं।

क्या फरक्का के सारे गेट खोल देने या सब में अंदरूनी जलद्वार लगाने से कोई हल निकलेगा? राजीव सिन्हा कहते हैं कि गंगा में गाद इतनी ज्यादा आती है कि सारी अंदरूनी जलद्वार के जरिये नहीं धकेली जा सकती। दूसरी अड़चन यह है कि फरक्का पर गंगा का बहाव सीधा न होकर तिरछा है। नतीजतन दाईं तरफ नदी का बहाव ज्यादा है, जबकि इस हिस्से की जल (और गाद) प्रवाह क्षमता सीमित है।

तो क्या फरक्का बैराज को बंद किया या तोड़ा जा सकता है? रुद्र मानते हैं कि यह सही नहीं होगा। वह कहते हैं, "हालांकि मैंने फरक्का की काफी आलोचना की है, मैं मानता हूं कि यह बैराज एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। फरक्का बैराज ने बंगाल के मुर्शीदाबाद और नदिया जिले से होकर बहते भागीरथी-हुगली नदी 220 किलोमीटर के हिस्से को पुनः जीवित कर दिया है। यह हिस्सा गंगा डॉल्फिन का घर है। यह हिलसा के प्रजनन की जगह भी है। यहां नदी ने अपने आपको बदले हालात के अनुरूप ढाल लिया है।" फरक्का भागीरथी-हुगली के किनारे बसी 44 नगर पालिकाओं में पानी की जरूरत को भी पूरा करता है। यह घनी आबादी वाला क्षेत्र है जिसमें कोलकाता भी शामिल है। बैराज की वजह से हुगली के निचले हिस्से में खारापन कम हुआ है। "अगर आप फरक्का को बंद कर देंगे तो यह नदी सूख जाएगी," रुद्र कहते हैं। बैराज तोड़ने से बांग्लादेश में बाढ़ का खतरा भी पैदा हो जाएगा। नदियों के जानकार दिनेश कुमार मिश्र कहते हैं, "नीतीश कुमार जानते हैं जिस दिन फरक्का को हाथ लगाया जाएगा बांग्लादेश यूएनओ में जाएगा।"

कुछ लोगों का सुझाव है कि फरक्का की जगह एक अलग डिजाइन का बैराज बनाया जाए जिससे बांग्लादेश और भारत के बीच पानी का बंटवारा भी जस का तस बना रहे और गाद की रुकावट भी दूर हो जाए। यह देखना होगा कि ये सुझाव फरक्का के लिए कितने उपयुक्त हैं। पर कोई भी डिजाइन कितनी भी बेहतर क्यों न हो, बिना सही रखरखाव के उसका भी फरक्का जैसा ही हाल होगा।

वैकल्पिक डिजाइन

भरत झुनझुनवाला सहित और कई पर्यावरणविदों ने फरक्का के तीन विकल्प सुझाए हैं, वहीं हाइड्रोलिक इंजीनियर नयन शर्मा ने एक आधुनिक तकनीक के वीयर की बात की है।

- यमुना पर बना अंग्रेजी के एल अक्षर के आकर का ताजेवाला बैराज नदी के दूसरे किनारे तक नहीं जाता। यह घुमावदार बहाव का फायदा उठाकर पानी को एक तरफ मोड़ देता था।
- गंगा पर बना भीमगोडा बैराज नदी के दो किनारों से आती दो ठोकरों (स्पर्स) की तरह था जिसके बीच में खाली जगह थी।
- अलवर में रुपारेल नदी पर बिना गेट का ऐसा ढांचा बनाया गया है जो नदी के बहाव को 55:45 के अनुपात में बांट देता है।

- 'पियानो की वीयर' एक नयी तकनीक का वीयर है, जिसमें कोई गेट नहीं होते। यह नदी कि अपनी शक्ति का उपयोग करता है और 85 प्रतिशत गाद निकाल सकता है।

फरक्का बैराज के फाटक 15 मीटर से ऊंचे हैं और यह 87 मिलियन घन मीटर पानी रोक कर रखते हैं, इस लिहाज से यह एक विशाल बांध है

भास्करज्योति गोस्वामी / सीएसई

उड़ाही (ड्रेजिंग) कर के गाद की समस्या हल कर देगा तो शक होता है कि आखिर वह नदियों के स्वास्थ्य को लेकर कितनी गंभीर हैं। बिहार में फिलहाल गंगा जलमार्ग के लिए हो रही उड़ाही को रोक दिया गया है।

तो आखिर नदियों के उथलेपन का उपाय क्या है? इसके लिए तीन काम करने होंगे। पहला तो यह कि जैसा चितले समिति ने कहा है, गाद को रास्ता दिया जाए। दूसरा यह कि पानी का प्रवाह बढ़ाया जाए ताकि वह गाद को बहाकर ले जाए। और तीसरा, नदी के जल ग्रहण क्षेत्र में मिट्टी के कटाव को रोका जाए, ताकि नदियों में गाद कम आए।

पर भारत में चालू शायद ही किसी बांध या बैराज में गाद के बहने का कोई उपाय है। जल संसाधन मंत्रालय, जैसा कि नाम से ही झलकता है, नदियों को महज जल संसाधन के रूप में देखता है। गाद की तरफ कभी इसका ध्यान ही नहीं गया। जबकि गंगा-ब्रह्मपुत्र नदी प्रणाली में गाद की मात्रा दुनिया में सबसे अधिक है। गंगा का मैदान और बंगाल का डेल्टा इसी गाद से बने हैं।

आइआइटी कानपुर के राजीव सिन्हा का कहना है कि "फरक्का के डिजाइन और रखरखाव को बेहतर करने से स्थिति में काफी हद तक सुधार आ सकता है। पर मेरा विचार है कि यह काफी नहीं होगा। गंगा में गाद इस हद तक जम चुकी है कि अब आप अगर पचास साल पहले वाला प्रवाह भी पैदा कर दें तो भी इसे बहा कर साफ नहीं कर सकते। इसलिए आपको कुछ जगहों पर नियंत्रित तरीके से गाद निकालनी ही पड़ेगी।" अतः पहला कदम होना चाहिए फरक्का बैराज के रखरखाव, संचालन और डिजाइन का पुनरावलोकन और दूसरा उन जगहों को चिह्नित करना जहां गाद निकालना जरूरी है।

गाद को रास्ता देने का एक दूसरा आयाम भी है। वह है नदियों को बाढ़ के समय दोनों तरफ फैलने देना। यह भूजल पुनर्भरण के लिए भी जरूरी है। रुद्र कहते हैं, "बाढ़ से पूरी तरह मुक्ति वांछनीय नहीं है।" जरूरत है बाढ़ के पानी को नदी किनारे निचले इलाकों और झीलों में रोक कर रखने की। और जरूरत पड़ने पर इन झीलों और तालाबों से गाद निकाली जा सकती है। पर बिहार में गंगा कि सहायक नदियों के किनारे बने तटबंधों का जाल सा बिछा हुआ है, जो गाद को विस्तृत क्षेत्र में फैलने से रोकता है। परिणामस्वरूप गाद नदियों के तल में जम रही है और नदियों का तल ऊपर उठ रहा है। नतीजा यह है की पिछले छह दशकों में बिहार का बाढ़ क्षेत्र तिगुना हो गया है। बिहार चाहे तो इस पर पहल कर सकता है।

बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने राष्ट्रीय गाद नीति की मांग की है जो जरूरी है। क्यों न इसकी शुरुआत बिहार से हो? क्यों न बिहार अध्ययन करे कि राज्य में कितनी गाद कहां से आ रही है और तय करे कि नदियों का बाढ़ क्षेत्र कितना है जहां कोई दखल न हो?

गंगा में 80 प्रतिशत गाद खड़ी ढाल वाले हिमालय के उन ऊंचे पहाड़ों से आती है जहां जंगल कम हैं और व्यापक चराई होती है। इस जल ग्रहण क्षेत्र में वनों के कटाव और उससे होने वाले भूमि क्षरण को अगर रोका जाए तो गाद की मात्रा कुछ कम हो सकती है। इसके लिए नेपाल के सहयोग की जरूरत है। केंद्र सरकार इस पर पहल कर सकती है।

बिहार सरकार ने गंगा की अविरलता पर पटना में एक सेमिनार आयोजित करके एक "पटना डेक्लेरेशन" स्वीकार किया है। इसमें "सिविलाइजेशनल रीफोर्म" की बात की गई है। यह दो तरह से हो सकते हैं। एक, जिसमें हम नदी के साथ अपना बर्ताव बदलने के बजाए उसके दुष्परिणामों से बचने के लिए सारी तकनीक झोंक दें। और दूसरा, हम नदी के समग्र और जीवंत रूप का आदर करते हुए अपनी नीति बदलें।

आखिर कितनी गाद?

गंगा के प्रवाह और गाद से जुड़े ताजा आंकड़े हासिल करना आसान नहीं है, क्योंकि यह क्लासीफाइड जानकारी के तहत आते हैं। नजर अब्बास और वी सुब्रमनियन के 1984 के अध्ययन के अनुसार, फरक्का पर गंगा में हर साल 80 करोड़ टन गाद आती है। आर जे वासन के 2003 के अध्ययन के अनुसार 73.6 करोड़ टन गाद आती है। बिहार के सिंचाई विभाग का 1999 में अनुमान था 30.1 टन। गंगा बाढ़ नियंत्रण आयोग द्वारा गंगा की उड़ाही पर बनी चितले समिति को पिछले साल सौंपे गए आंकड़ों के अनुसार यह महज 21.8 करोड़ टन है। अधिकतर लोग सरकारी आंकड़ों से सहमत नहीं हैं। नदी विशेषज्ञ कल्याण रुद्र का 2004 में अनुमान था कि हर साल फरक्का में 72.9 करोड़ टन गाद आती है, जिसमें से 32.8 करोड़ टन बैराज के पीछे रुक जाती है।

नदियों से बेधड़क छीना जा रहा है उनका घर-आंगन

100 बरस में आने वाली सबसे बड़ी बाढ़ के हिसाब से नदियों के डूब क्षेत्र को खाली करने की मांग दुनियाभर में उठ रही है

विवेक मिश्रा

इंसानों की तरह नदियों का भी घर-आंगन है। उन्हें भी अपने मैदान में खेलना-कूदना अच्छा लगता है। हमने दूसरों के घर-आंगन पर नजरे टिकाने का हुनर सीख लिया है। अब नदियों के घर-आंगन यानी 'डूब क्षेत्र' पर हमारी नजर है। कई नदियों के डूब क्षेत्र पर अतिक्रमण का संकट है। ऐसी ही स्थिति रही और छोटी व सहायक नदियों का दम घुटा तो गंगा और यमुना जैसी बड़ी और प्रमुख नदियों का अस्तित्व भी खतरे में पड़ जाएगा। नदियों की सेहत को बरकरार रखने वाले डूब क्षेत्र के संरक्षण की अनदेखी बदस्तूर जारी है। बिहार के किशनगंज में गंगा की प्रमुख सहायक नदी महानंदा के डूब क्षेत्र का भी यही हाल है, इसी कारण से नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल को 2018 में अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के एक कैंपस निर्माण पर अस्थायी रोक लगानी पड़ी।

बिहार के किशनगंज की जिला वेबसाइट पर भी महानंदा नदी का जिक्र है। जिले की सरकारी वेबसाइट में महानंदा नदी का परिचय लिखा गया है कि नदी बस अड्डे से महज छह किलोमीटर की दूरी पर बहती है। डूब क्षेत्र का संरक्षण यदि नहीं किया गया तो यह सरकारी परिचय सिर्फ लिखा भर रह जाएगा। नियमों के विरुद्ध एएमयू के कैंपस निर्माण को महानंदा नदी किनारे 224.02 हेक्टेयर भूमि दी गई थी। यह भूमि जांच के बाद बाढ़ क्षेत्र में ही पाई गई। एएमयू के जरिए नए कैंपस की दीवार को तैयार करने का काम शुरु कर दिया गया था।

एनजीटी की एस.पी.वांगड़ी की अध्यक्षता वाली पीठ ने माझी परगना अभैन बैसी की ओर से दाखिल याचिका पर विचार करने के बाद 18 फरवरी को निर्माण कार्य पर रोक लगाई। पीठ ने कहा कि राष्ट्रीय स्वच्छ गंगा मिशन (एनएमसीजी) की ओर से दाखिल हलफनामे पर गौर करने के बाद यह बात स्पष्ट है कि एएमयू के संबंधित कैंपस का निर्माण कार्य गंगा (पुनरुद्धार, संरक्षण और प्रबंधन), प्राधिकरण के जरिए 07 अक्तूबर, 2016 को दिए गए आदेशों के विरुद्ध है। इसके अलावा एनएमसीजी के जरिए 06 जनवरी, 2017 में पर्यावरण संरक्षण कानून, 1986 के अधीन धारा 5 के तहत परियोजना निर्माण कार्य के विरुद्ध आदेश जारी किए गए थे। पीठ ने कहा कि एनएमसीजी इस परियोजना को लेकर जल्द से जल्द अंतिम निष्कर्ष पर पहुंचे।

पीठ ने कहा कि यह कहने की जरूरत नहीं है कि एएमयू हो या अन्य प्राधिकरण एनएमसीजी के आदेश के तहत निवारण को लेकर पहल कर सकती हैं। हालांकि, गंगा (पुनरुद्धार, संरक्षण और प्रबंधन), प्राधिकरण के 07 अक्तूबर, 2016 के आदेश के तहत कोई भी निर्माण कार्य नहीं होना चाहिए।

बात सिर्फ गंगा के सहायक नदी महानंदा की नहीं है। राष्ट्रीय नदी गंगा के साथ यमुना व अन्य नदियों के डूब क्षेत्र पर या तो अतिक्रमण है या उनका बेजा इस्तेमाल किया जा रहा है। जबकि डूब क्षेत्र के स्पष्ट सीमांकन को लेकर एनजीटी ने 2017 में बेहद अहम फैसला दिया था। इसे लेकर कोई खास पहल नहीं की गई।

एनजीटी ने राष्ट्रीय नदी गंगा के संरक्षण को लेकर 13 जुलाई, 2017 को 543 पृष्ठों का विस्तृत फैसला सुनाते हुए कहा था कि न सिर्फ डूब क्षेत्र का संरक्षण होना चाहिए बल्कि डूब क्षेत्र का सीमांकन भी किया जाना चाहिए। गंगा के डूब क्षेत्र सीमांकन को लेकर इस दिशा में अभी तक कोई ठोस पहल नहीं की गई है।

विज्ञान एवं पर्यावरण केंद्र (सीएसई) के जल कार्यक्रम के वरिष्ठ निदेशक सुरेश कुमार रोहिला ने बताया कि डूब क्षेत्र एक व्यापक अवधारणा है। पूरी तरह यह नहीं कहा जा सकता कि डूब क्षेत्र पर कुछ भी नहीं बनाया जा सकता है। पहले कानूनी वैधता और उसके बाद विज्ञान और तकनीकी का सहारा लेकर डूब क्षेत्र पर कुछ अत्यंत जरूरी निर्माण किए जा सकते हैं। इसके अलावा हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि भारतीय नदियों की प्रकृति सर्पीली है। वे बल खाते हुए इधर से उधर अठखेलियां करती हैं। ऐसे में नदी अपने दाएं और बाएं कब और कितनी दूरी का सफर तय करेगी यह बहुत निश्चित नहीं होता। फिर भी 100 वर्षों से लेकर 25 वर्षों के बाढ़ इतिहास तक को जरूर देखा और समझा जाता है ताकि नदी का रास्ता कुछ हद तक समझा जा सके।

सुरेश कुमार रोहिला ने बताया कि नीदरलैंड ने 200 वर्षों के बाढ़ के आंकड़ों का संग्रहण कर मॉडल विकसित किया था कि उनके यहां सूखा क्षेत्र कहां हैं और डूब क्षेत्र कहां है। इस आधार पर वहां निर्माण कार्य और विकास के कामकाज हुए लेकिन महज 24 वर्षों में ही यह मॉडल फेल हो गया है। वहीं, अब यूके, फ्रांस, जर्मनी, नीदरलैंड में नदियों के तटबंध तोड़े जा रहे हैं और यथासंभव उनके घर-आंगन यानी डूब क्षेत्र को उन्हें वापस लौटाया जा रहा है। करीब-करीब समूचे यूरोप ने नदियों को आजादी देने का फैसला किया है। हमें अब यह सीख लेने की जरूरत पड़ गई है कि नदियों को बांधने के बजाए मुक्त किया जाए। नदियों के लिए डूब क्षेत्र उनकी आत्मा हैं। यह न सिर्फ जल भंडारण का काम करती हैं बल्कि जल को साफ करने के लिए छन्नी का भी काम करती हैं। डूब क्षेत्र को नुकसान पहुंचाने का आशय है कि सीधा नदी को प्रभावित करना।

रोहिला ने बताया कि समुद्रों के तटों को संरक्षित करने के लिए जिस तरह तटीय नियमन क्षेत्र (सीआरजेड) है उसी तरह दस वर्ष पहले नदियों के नियमन क्षेत्र के लिए प्रारूप तैयार किया गया था। दुर्भाग्य है कि इस पर आज तक सहमति नहीं बन पाई।

यमुना जिये अभियान के संयोजक व पर्यावरणविद् मनोज मिश्रा ने कहा कि नदियों का स्वरूप बहुत हद तक मानसून पर निर्भर करता है। वह मानसून के आधार पर बनती-बिगड़ती हैं। बरसात के समय नदी का फैलाव क्षेत्र ही उसका असली डूब क्षेत्र है। डूब क्षेत्र का असली काम यह है कि जब नदियां अपना फैलाव हासिल करें तो उन्हें जगह की कोई कमी न हो। इसके अलावा डूब क्षेत्र से कोई और दूसरा काम नहीं लिया जाना चाहिए। इतना ही नहीं जब डूब क्षेत्र में नदियां अपना फैलाव हासिल करती हैं तो वे भू-जल को भी रीचार्ज करती हैं। ऐसे में जब डूब क्षेत्र ही नहीं रहेगा तो नदियों के जरिए किया जाना वाला यह अनोखा काम कौन करेगा?

उन्होंने बताया कि जब गंगा सफाई को लेकर आईआईटी का संघ बनाया गया था, उसी वक्त आईआईटी कानपुर ने गंगा के डूब क्षेत्र का सीमांकन कर डिजिटल नक्शा तैयार किया था। इस नक्शे को कूड़ेदान में फेंक दिया गया। आज तक इस पर कोई जमीनी काम नहीं किया गया। गंगा-यमुना समेत तमाम नदियों के डूब क्षेत्र पर अतिक्रमण का यही हाल है। जो लोग यह दलील देते हैं कि नदियां स्थिर नहीं होती तो उनका सीमांकन नहीं किया जा सकता वे जिम्मेदारी से बचना चाहते हैं। 100 वर्षीय बाढ़ के हिसाब से नदी के डूब क्षेत्र को अतिक्रमण मुक्त रखने की मांग पूरी दुनिया में उठ रही है। ऐसा यहां भी होना चाहिए। वरना हम सभी जानते हैं कि जब हम दूसरे के घर-आंगन में जबरदस्ती दाखिल होंगे तो वहां से भगा दिए जाएंगे। डूब क्षेत्र के अतिक्रमण को लेकर सबब के तौर पर चेन्नई की बाढ़ विभीषिका को हमें नहीं भूलना चाहिए।

नमामि गंगे की कटती धारा

गंगा की सफाई का काम 1985 से जारी है लेकिन अब भी यह स्पष्ट तौर पर कहा जा सकता है कि गंगा स्वच्छ नहीं हो पायी। नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल (एनजीटी) ने गंगा के एक विस्तृत फैसले में कहा कि गंगा और प्रदूषित ही हुई। वहीं, नमामि गंगे परियोजना भी अब सवालों के घेरे में है, अनिल अश्विनी शर्मा का विश्लेषण

फोटो : विकास चौधरी / सीएसई

केंद्र सरकार की उच्च प्राथमिकता वाली नमामि गंगे परियोजना की सफलता पर भी लगातार सवाल उठ रहे हैं। 2014 की इस परियोजना के तहत 2019 तक गंगा को साफ हो जाना चाहिए था लेकिन बाद में लक्ष्य 2020 के लिए विस्तारित कर दिया गया, यह लक्ष्य हाल-फिलहाल पूरा होते हुए नहीं दिख रहा है।

राष्ट्रीय हरित न्यायाधिकरण (एनजीटी) ने 13 जुलाई 2017 को गंगा की सफाई पर फैसला देते हुए कहा कि सरकार ने गंगा को शुद्ध करने के लिए बीते दो साल में 7,000 करोड़ रुपए खर्च किए हैं,लेकिन गंगा नदी की गुणवत्ता के मामले में रत्तीभर सुधार नहीं दिखा है। एनजीटी ने फैसले में कहा कि यह एक गंभीर पर्यावरण मुद्दा है। ऐसा तब है जब यह योजना केंद्र की कार्यसूची में पहली प्राथमिकता पर है। एनजीटी का यह आदेश इसलिए अभूतपूर्व है क्योंकि एनजीटी ने आदेश में यह स्पष्ट किया है कि इतना खर्च और ध्यान देने के बावजूद नदी अब और अधिक प्रदूषित हो गई है। फैसले में एनजीटी ने कहा, "आगे अब और इंतजार करने की कोई गुंजाइश नहीं बची है।"

543 पृष्ठों के अपने आदेश में एनजीटी ने कहा, मार्च, 2017 तक 7304.64 करोड़ रुपए खर्च करने के बाद केंद्र, राज्य सरकारें और उत्तर प्रदेश राज्य के स्थानीय प्राधिकरण, गंगा नदी की गुणवत्ता के मामले में सुधार कर पाने में असफल रहे। एनजीटी ने नदी के 100 मीटर के भीतर सभी निर्माण गतिविधियों पर प्रतिबंध लगाने सहित नदी से 500 मीटर की दूरी के भीतर कचरा डालने पर भी प्रतिबंध लगा दिया और आदेश दिया कि ऐसा करने वालों पर 50,000 रुपये का जुर्माना लगाया जाए।

एनजीटी के फैसले पर हिमालयन एनवायरमेंट स्टडीज एंड कंजरवेशन ऑर्गनाइजेशन के संस्थापक अनिल प्रकाश जोशी ने कहा, "एनजीटी तो बहुत कमजोर है। वह लगातार फैसले दे रहा है लेकिन सरकार उसके आदेशों को लागू नहीं करवाती। एनजीटी ने इसके पहले भी हरिद्वार के लिए कई आदेश पास किए लेकिन सरकारी उदासीनता के कारण एनजीटी के आदेश बेमानी साबित हो रहे हैं। इसीलिए जब तक सख्त आदेश न हों और संबंधित प्रदूषण फैलाने वालों के खिलाफ एनजीटी के माध्यम से प्राथमिकी न दर्ज हो जाए, तब तक कुछ नहीं होना वाला।" कानपुर के वरिष्ठ पत्रकार राहुल शुक्ला कहते हैं, "एनजीटी का फैसला अपने आप में अजीब है। इसमें 100 मीटर तक के दायरे में विकास कार्यों पर प्रतिबंध लगाया है। इसके पहले हाईकोर्ट 200 मीटर तक के दायरे में निर्माण कार्य पर प्रतिबंध लगा चुका था। एनजीटी ने इसे नो डेवलपमेंट जोन घोषित कर दिया है। यहां सवाल उठता है कि विकास कार्य के अंतर्गत तो सड़क व खडंजा भी आता है।"

एनजीटी के इस फैसले पर बनारस में गंगा सफाई अभियानों में बतौर सलाहकार और गैर सरकारी संगठन आशा के सामाजिक कार्यकर्ता वल्लभ पांडे कहते हैं "एनजीटी के फैसले के दूरगामी परिणाम होंगे। ऐसे फैसलों के नतीजे तुरंत नहीं दिखते हैं। निर्माण सामग्री को बारिश के समय बहने से रोकने लिए कोई इंतजाम नहीं होता है। यह बहकर सीधे गंगा में जाती है और इससे नदी उथली होती जाती है और बाढ़ का खतरा बढ़ जाता है।" वह कहते हैं कि निर्माण कार्यों के दौरान बड़ी मात्रा में गंदा पानी नदी में बहा दिया जाता है। बिहार के सीतामढी में नदियों पर काम कर रहे सामाजिक कार्यकर्ता शशि शेखर इस बात को खारिज करते हैं कि एनजीटी के फैसलों का कोई असर नहीं होता। वह कहते हैं, "एनजीटी जुर्माना लगाता है। चूंकि एनजीटी सुप्रीम कोर्ट को रिपोर्ट करता है इससे सरकार पर दबाव पड़ता है और उसे सफाई देनी पड़ती है।"

प्रदूषण का भार

देश के पांच राज्यों में बहने वाली गंगा नदी में प्रदूषण का स्तर लगातार बढ़ा है

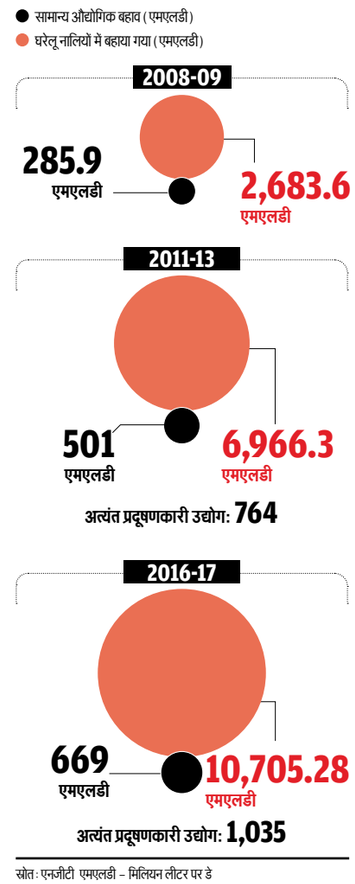

स्रोत: एनजीटी एमएलडी – मिलियन लीटर पर डे

जनभागीदारी का अभाव

अभियान की सफलता में जनभागीदारी एक महत्वपूर्ण पहलू होता है। बिहार, उत्तर प्रदेश और झारखंड के इलाकों में बहने वाली गंगा के सफाई अभियानों में सक्रिय रहे रांची के सामाजिक कार्यकर्ता प्रवीर पीटर कहते हैं, "हर सरकारी योजना की सबसे बड़ी कमजोरी होती है कि उसके साथ जनता को भागीदार नहीं बनाया जाता है। नमामि परियोजना पूरी तरह से सरकारी मशीनरी पर आधारित है। इस तरह के बड़े काम को सामुदायिक

देश की सांस्कृतिक राजधानी का दर्जा प्राप्त वाराणसी के प्रसिद्ध गंगा घाट में से एक घाट में सफाई की असलियत

योजना की तरह लागू करना चाहिए, लोगों को सीधा जुड़ाव महसूस होना चाहिए।" वहीं, उन्नाव में नेहरू युवक केंद्र से जुड़ी कार्यकर्ता सोनी शुक्ला कहती हैं, "जहां तक नमामि की सफलता की बात है इसके तहत आश्चर्यजनक ढंग से पहले घाटों पर निर्माण कार्य चल रहा है। लेकिन शहर के नालों की दिशा बदलने पर किसी तरह का काम अब तक शुरू नहीं हुआ है। इस योजना का हश्र भी गंगा सफाई की पुरानी योजनाओं की तरह होना है।" वह कहती हैं, "वर्तमान में यहां समाजवादी सरकार के ही नौकरशाह पदस्थ हैं, जिन्होंने पिछले दो साल से इस परियोजना को ठंडे बस्ते में डाल दिया था।" भागलपुर में गंगा मुक्ति आंदोलन से जुडे नाट्यकर्मी लल्लन कहते हैं, "नमामि परियोजना का तो यहां कोई नाम लेने वाला नहीं है। गंगा की सफाई बीते दशकों में जितनी हुई, वह बस स्थानीय लोगों की भागीदारी से हुई है। यहां तो गंगा नदी, गंगा नाला बन कर रह गई है।"

कहां और कब तक

सरकार ने नमामि परियोजना के लिए कई स्तर पर कार्ययोजनाओं का खाका खींचा है। योजना आठ प्रमुख कार्य बिंदुओं के इर्दगिर्द घूमती है। इनमें प्रमुख है गंगा किनारे सीवर उपचार संयंत्र का ढांचा खड़ा करना। योजना के तहत 63 सीवेज मैनेजमेंट प्रोजेक्ट उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड और पश्चिम बंगाल में लगाए जाएंगे। अब तक इनमें 12 पर काम चल रहा है। इसके अलावा हरिद्वार और वाराणसी में दो प्रोजेक्ट प्राइवेट पार्टनरशिप प्रोजेक्ट (पीपीपी) मॉडल यानी निजी सहभागिता पर भी शुरू करने की कोशिश की जा रही है। वहीं नदी मुहानों के विकास (रिवर फ्रंट डेवलपमेंट) के तहत 182 घाटों और 118 श्मशान घाटों का आधुनिकीकरण किया जाएगा। अब तक उन्नाव में चार और वाराणसी के 12 घाटों पर निर्माण कार्य चल रहा है। नदी के सतह की सफाई के लिए अब तक 11 जगहों को चुना गया है और इन पर काम शुरू हुआ है। जैव-विविधता संरक्षण के लिए देहरादून, नरोरा, इलाहाबाद, वाराणसी और बैराकपुर में पांच केंद्रों की पहचान की गई। इन पर अभी काम शुरू नहीं हुआ है। उत्तराखंड के सात जिलों में औषधीय पौधों के संरक्षण का कार्य भी अभी शुरू हुआ है। गंगा किनारे लगी 760 औद्योगिक इकाइयों में से 572 में औद्योगिक कचरा निगरानी यंत्र लगाए जा चुके हैं। गंगा किनारे बसे पांच राज्यों की 1647 ग्राम पंचायतों की पहचान की गई है। इन राज्यों में लक्षित 15 लाख 27 हजार 105 शौचालयों में से अब तक 8 लाख 53 हजार 397 शौचालयों का निर्माण कार्य पूरा हो गया है।

रुचि हो रही कम

नमामि प्रधानमंत्री की एक स्वप्निल परियोजना है लेकिन अब इसके प्रति सरकारी नजरिए से यह सवाल उठने लगा है कि क्या समय बीतने के साथ प्रधानमंत्री की निजी रुचि इसमें कम हो रही है। केंद्रीय जल संसाधन मंत्रालय इन दिनों ऐसा ही संकेत दे रहा है। मंत्रालय के एक वरिष्ठ अधिकारी ने कहा, हमारी मंत्री पिछले दो माह में तीन बार प्रधानमंत्री कार्यालय (पीएमओ) नमामि गंगे की फाइलें लेकर गईं, लेकिन उन्हें बस तारीख ही मिली। गौरतलब है कि गंगा को निर्मल करने के लिए बुलाई गई राष्ट्रीय गंगा नदी बेसिन प्राधिकरण (एनजीआरबीए) की तीन बैठकों में से सिर्फ एक बैठक की अध्यक्षता 26 मार्च, 2014 को प्रधानमंत्री ने खुद की थी। अन्य दो बैठकों की अध्यक्षता केंद्रीय मंत्री उमा भारती ने की थी जो 27 अक्टूबर, 2014 और 4 जुलाई, 2016 को हुई थी। जबकि मोदी के पूर्ववर्ती प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने अपने दूसरे कार्यकाल के दौरान हुई प्राधिकरण की सभी तीन बैठकों की अध्यक्षता की थी। ये बैठकें क्रमशः 5 अक्टूबर, 2009, 1 नवंबर, 2010, और 17 अप्रैल, 2012 को हुई थीं। गंगा सफाई की यही कड़वी सच्चाई है। प्रधानमंत्री गंगा सफाई के लिए बनी सबसे अहम सरकारी इकाई की बैठक में ही हिस्सा न लें, ऐसे में नमामि गंगा परियोजना की सफलता पर सवाल तो उठेंगे ही।

बदलते अधिकारी

किसी योजना की सफलता का दारोमदार बहुत कुछ परियोजना के निदेशक पर निर्भर करता है। लेकिन इस मामले में नमामि अपवाद है। क्योंकि नमामि परियोजना शुरू हुए दो साल हुए हैं और इस दौरान इसके छह-छह निदेशक बदले गए। जल संसाधन मंत्रालय के एक वरिष्ठ अधिकारी कहते हैं कि इसका एक बड़ा कारण यह था कि कोई भी निदेशक इस परियोजना से जुड़े सभी राज्यों को साथ ला पाने में सफल नहीं हो पा रहा था। चूंकि पांच राज्यों में भाजपा के पास केवल झारखंड था, इसके अलावा अन्य चार राज्यों में अलग-अलग राजनीतिक दलों की सरकार थी। इसके कारण नमामि के निदेशकों को इस योजना के क्रियान्यवन में भारी परेशानी का सामना करना पड़ रहा था। कोई भी केंद्र सरकार जब यह देखेगी कि उसके द्वारा नियुक्त निदेशक राज्यों के साथ काम ही नहीं कर पा रहे हैं तो उन्हें बदलना ही पड़ेगा । इसके अलावा आखिरी जो निदेशक बदले गए, उनका मंत्री के साथ सामंजस्य नहीं बैठा। वर्तमान निदेशक यू.पी. सिंह अभी कुछ भी बोलने की स्थिति में नहीं है। वे अभी इसे समझने की कोशिश में जुटे हुए हैं।

हिमालयन एनवायरमेंट स्टडीज एंड कनजरवेशन ऑर्गनाइजेशन के अनिल प्रकाश जोशी कहते हैं, "निदेशकों से साथ समन्वय में नाकाम रहने का कारण केंद्र सरकार का रवैया जिम्मेदार है। केंद्र ने योजना ही ऐसी बनाई है जिसमें राज्यों की भागीदारी को न्यूनतम कर दिया। ऐसे में राज्य सरकार से सक्रिय सहयोग की उम्मीद कैसे की जा सकती है।

समन्वय नहीं

नमामि गंगे योजना की सफलता पांच राज्यों के समन्वय पर टिकी हुई है। लेकिन जब से यह योजना शुरू हुई तब से राज्य व केंद्र सरकार के बीच लगातार गतिरोध बना रहा। बिहार के सहरसा के सामाजिक कार्यकर्ता मदन मोहन मुरारी कहते हैं "जब पश्चिम बंगाल के मंत्री से लेकर अधिकारी तक को केंद्र के इशारे पर सीबीआई अपनी चपेट में ले रही हो तो आप कैसे यह उम्मीद करते हैं वे आपकी किसी योजना को अपने राज्य में सफल होने देंगे।" राज्यों के समन्वय के सवाल पर झारखंड के साहेबगंज के जेपी आंदोलन के कार्यकर्ता और वकील ललित स्वदेशी ने कहा कि जब यह योजना शुरू हुई थी तो उत्तराखंड में कांग्रेस सरकार थी, उसने इस योजना के लिए आए पैसे का कोई उपयोग नहीं किया। वहीं उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी ने इस योजना को पूरी तरह से उपेक्षित किया। झारखंड में भाजपा की सरकार है और यहां गंगा केवल 40 किलोमीटर तक ही बहती है। ऐसे में इस योजना पर राज्य सरकार का प्रभाव न के बराबर है। पटना में गंगा बचाओ अभियान के संस्थापक गुड्डू बाबा कहते हैं कि बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने कहा कि जब तक गाद का प्रबंधन नहीं होगा यह योजना सफल नहीं होगी (*डाउन टू अर्थ*, जुलाई 2017)। कुमार की यह बात सकारात्मक रूप में लेनी चाहिए। आखिर नमामि गंगे परियोजना के तहत केंद्र ने हल्दिया से इलाहाबाद तक जल मार्ग निर्माण की बात कही है। जब जहाज चलाए जाएंगे तो नदी में पांच मीटर की गहराई का प्रबंधन करना केंद्र सरकार की मजबूरी होगी। इससे गाद की समस्या स्वतः खत्म हो जाएगी।

तीन दशकों से बनारस के पास कैथी गांव में गंगा की सफाई करने वाले 62 साल के नारायणदास गोस्वामी कहते हैं कि अभी तक नमामि का लक्ष्य 2020 है । लेकिन मुझे नहीं लगता है कि यह तय समय-सीमा पर अपने लक्ष्य को प्राप्त करेगी क्योंकि पिछले दो साल में जितना भी नमामि गंगे के तहत काम हुआ है वह बहुत उत्साहवर्धक नहीं है। जहां तक नदी में गिरने वाले सीवेज के लिए एसटीपी बनाए जाने की बात है तो इसके लिए अभी तक निविदाएं ही जारी हो रही हैं। कानपुर में सीवेज लाइन बिछा दी गई लेकिन उससे कोई कनेक्शन नहीं ले रहा है। सरकार की योजना अच्छी है लेकिन इसे लागू करवाने का तंत्र नाकाम हो रहा है।

मरघट में गंगा

स्वच्छ भारत मिशन के तहत शौचालय निर्माण का लक्ष्य हासिल करना प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की बड़ी उपलब्धि है लेकिन जहां तक गंगा की सफाई का सवाल है, तो वह इस कार्यकाल में पूरा होना असंभव है। बार-बार समयसीमा बढ़ने के बाद भी गंगा मैली ही है। 2019 में होने वाला लोकसभा चुनाव अगर गंगा की सफाई के आधार पर परखा जाए तो यह मोदी के चुनावी वादे की बहुत बड़ी नाकामी होगी क्योंकि पिछले लोकसभा चुनाव में उन्होंने अपने भाषणों में बार-बार गंगा की निर्मलता का जिक्र किया था। गंगा की सफाई के लिए जारी निधि का खर्च न होना, परियोजनाओं की धीमी रफ्तार और नदी की धारा को अविरल बनाने के लिए कोई काम न होना, नमामि गंगे कार्यक्रम पर सवालिया निशान लगाता है। कानपुर, इलाहाबाद और वाराणसी की यात्रा कर बनजोत कौर ने गंगा सफाई के वादों और हकीकत की पड़ताल की

केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के मानकों के अनुसार, गंगा किनारे वसे किसी भी महत्वपूर्ण शहर में नदी का पानी पीने योग्य नहीं है

रॉयटर्स

प्रधानमंत्री बनने के बाद नरेंद्र मोदी ने गंगा की सफाई को अपनी सर्वोच्च प्राथमिकताओं में शामिल करते हुए गंगा सफाई के तमाम कार्यक्रमों को बदल दिया। अपने पहले ही बजट में इसके लिए 2,000 करोड़ रुपए आबंटित किए। इसके बाद मंत्रिमंडल ने 13 मई 2015 को नमामि गंगे कार्यक्रम को मंजूरी दी और पांच वर्षों के लिए 20 हजार करोड़ रुपए देने की बात कही। यह 1985 से शुरू हुए गंगा एक्शन प्लान का लगभग पांच गुणा था। 7 अक्टूबर 2016 को राजपत्र अधिसूचना निकाली गई जिसके तहत नेशनल गंगा रिवर बेसिन अथॉरिटी को भंग कर नेशनल गंगा काउंसिल का गठन किया गया और नेशनल मिशन फॉर क्लीन गंगा (एनएमसीजी) को अथॉरिटी के रूप में मान्यता मिली। इतना ही नहीं गंगा के लिए अलग मंत्रालय का भी गठन हुआ। 2017 में मोदी के एक होनहार कहे जाने वाले मंत्री नितिन गडकरी ने उमा भारती के बाद इस मंत्रालय का पदभार संभाला पर योजनाएं पटरी पर नहीं आईं तो गडकरी ने हाल ही में यह ऐलान किया कि गंगा दिसंबर 2020 में स्वच्छ होगी। जबकि मोदी ने गंगा सफाई का लक्ष्य 2019 रखा था। गंगा की सफाई हो पाएगी या नहीं यह तो समय बताएगा लेकिन अब तक के प्रयास बता रहे हैं कि गंगा सफाई कार्यक्रमों में पुरानी गलतियों को दोहराया जा रहा है।

एक नदी मुख्य रूप से एक ऐसा बड़ा चैनल है, जो बड़े क्षेत्र (जिसे कैचमेंट भी कहा जाता है) से पानी निकालती है और सैकड़ों सहायक और छोटे जल स्त्रोत द्वारा समर्थित होती है। इसलिए, यदि कोई गंगा जैसी नदी को साफ करने के बारे में सोचता है तो उसे न सिर्फ नदी में फैले प्रदूषण को साफ करना है बल्कि इसकी कई सहायक नदियों और अन्य जल स्त्रोतों की सफाई पर भी ध्यान देना होगा। इसलिए, यह मौजूदा बहस खत्म हो गई है कि क्या गंगा मिशन को केवल नदी पर केन्द्रित होना है या विशाल कैचमेंट एरिया या इसके बेसिन पर भी ध्यान देना चाहिए। आईआईटी के एक संघ ने नमामी गंगे के लिए गंगा बेसिन दृष्टिकोण की सिफारिश की है। इसका मतलब है कि न केवल 2,525 किमी लंबी गंगा बल्कि इसकी सहायक नदियों की सफाई भी होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में कहें तो गंगा के तटीय हिस्से में यहां-वहां कुछ परियोजनाएं स्थापित करने की बजाय, पूरे नदी बेसिन यानी गंगा के तहत आने वाले सभी राज्य और इसकी सहायक नदियों को कार्यक्रम के दायरे में लाना चाहिए। गंगा की सफाई के लिए सरकार का वर्तमान सिद्धांत इसे स्वीकार करता है। इसकी कई गतिविधियां आईआईटी संघ के एक अध्ययन "गंगा कायाकल्प बेसिन प्रबंधन कार्यक्रम" (जीआरबीएमपी) से प्रेरित हैं।

हालांकि, यह केवल दस्तावेजों तक ही सीमित रहा। पिछले साल दिसंबर में आई भारत के नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक (सीएजी) रिपोर्ट में लिखा था, "एनएमसीजी ने न तो परामर्श के लिए विभिन्न मंत्रालयों/विभागों के बीच जीआरबीएमपी प्रसारित किया और उनकी राय मांगी, न ही गंगा पर दीर्घकालिक हस्तक्षेप शुरू करने के लिए जीआरबीएमपी को अंतिम रूप दिया।" एनएमसीजी वेबसाइट पर मौजूद दस्तावेज जिन विचाराधीन शहरों के बारे में बात करता है, वे मुख्य रूप से गंगा के तटीय क्षेत्र में स्थित हैं, जैसे उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड और पश्चिम बंगाल। इसमें गंगा की सहायक नदियों पर स्थित शहरों की बात नहीं है। सरकार नमामी गंगे के तहत योजनाबद्ध परियोजनाओं को पूरा करने में भी पीछे है। इसने 200 से अधिक परियोजनाओं के साथ कई अवसरों पर बताया है कि नमामि गंगे एक विशाल कार्यक्रम है। हालांकि, परियोजनाओं की स्थिति पर नजर डालें तो, तो संदेह उत्पन होता है कि क्या सरकार 2020 की संशोधित समयसीमा के भीतर लक्ष्य हासिल कर सकेगी। 31 अगस्त, 2018 तक 236 परियोजनाएं मंजूर की गईं, जिनमें से केवल 63 ही पूरी हो पाई हैं।

जहां तक सीवेज इंफ्रास्ट्रक्चर परियोजनाओं की बात है, 13 मई 2015 को केंद्रीय कैबिनेट द्वारा नमामि गंगे को मंजूरी मिलने के बाद 68 परियोजनाएं मंजूर की गई थीं। केवल छह परियोजनाएं 31 अगस्त 2018 तक पूरी हुई हैं। नमामि गंगे के गठन से पहले स्वीकृत 46 लंबित परियोजनाओं में से केवल 21 पूरी हो पाई हैं। गौरतलब है कि नमामि गंगे से पहले राष्ट्रीय गंगा नदी बेसिन अथॉरिटी (एनआरजीबीए) अस्तित्व में थी और इसी के तहत गंगा सफाई कार्यक्रम चल रहा था। नमामि गंगे के आने के बाद, एनआरजीबीए की सभी परियोजनाओं को नमामि गंगे कार्यक्रम में स्थानांतरित कर दिया गया था।

सीवेज उपचार संयंत्र (सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट अथवा एसटीपी) गंगा प्रदूषण खत्म करने के केंद्र में हैं। नमामी गंगे लक्ष्यों के मुताबिक, 2,000 मिलियन लीटर/दिन (एमएलडी) क्षमता के एसटीपी विकसित किए जाने हैं, जिसमें से केवल 328 एमएलडी क्षमता के एसटीपी ही विकसित हो पाए हैं। इस कार्यक्रम में पुराने और मौजूदा एसटीपी के पुनिर्विकास की भी परिकल्पना की गई है। पुनिर्विकास के माध्यम से 887 एमएलडी को नव निर्मित किया जाना था जिसमें से 92 एमएलडी किया गया। सरकार ने बार-बार कहा है कि नई परियोजनाओं में देरी हो रही है क्योंकि भूमि अधिग्रहण और अन्य संबंधित गतिविधियों में काफी समय लग रहा है। हालांकि, पुराने एसटीपी के पुनिर्विकास के काम में खराब प्रदर्शन के लिए लॉजिस्टिकल मुद्दों की कमी का तर्क समझ में नहीं आता है।

हालांकि, यह मुद्दा सिर्फ एसटीपी के निर्माण या पुनर्वास के साथ नहीं बल्कि उनके प्रदर्शन के साथ भी जुड़ा है। प्रत्येक स्थापित एसटीपी में बायोलॉजिकल ऑक्सीजन डिमांड (बीओडी) और टोटल सस्पेंडेड सॉलिड (टीएसएस) के लिए डिजाइन मानक है। कानपुर के जाजमऊ में 5 एमएलडी घरेलू अपशिष्ट जल उपचार संयंत्र में बीओडी का स्तर 65 मिलीग्राम/लीटर (30 के डिजाइन मानक के मुकाबले) और टीएसएस का स्तर 92 मिलीग्राम/लीटर (50 के डिजाइन मानक के मुकाबले) का प्रदूषण था। यह कानपुर जल निगम की अप्रैल-मई 2018 की रिपोर्ट के

मानकों पर खरा नहीं गंगा का पानी

उत्तर प्रदेश से पश्चिम बंगाल तक गंगा किनारे बसे किसी भी महत्वपूर्ण शहर में केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के मानकों के अनुसार नदी का पानी पीने योग्य नहीं है। बिहार के पटना, भागलपुर और बक्सर जिलों में तय जल मानक बोर्ड के मानकों के आसपास हैं। इसी प्रकार इन सारे शहरों में से एक भी शहर ऐसा नहीं जहां गंगा में स्नान किया जा सके। गंगा का पानी बोर्ड के किसी भी मानकों पर खरा नहीं उतरता

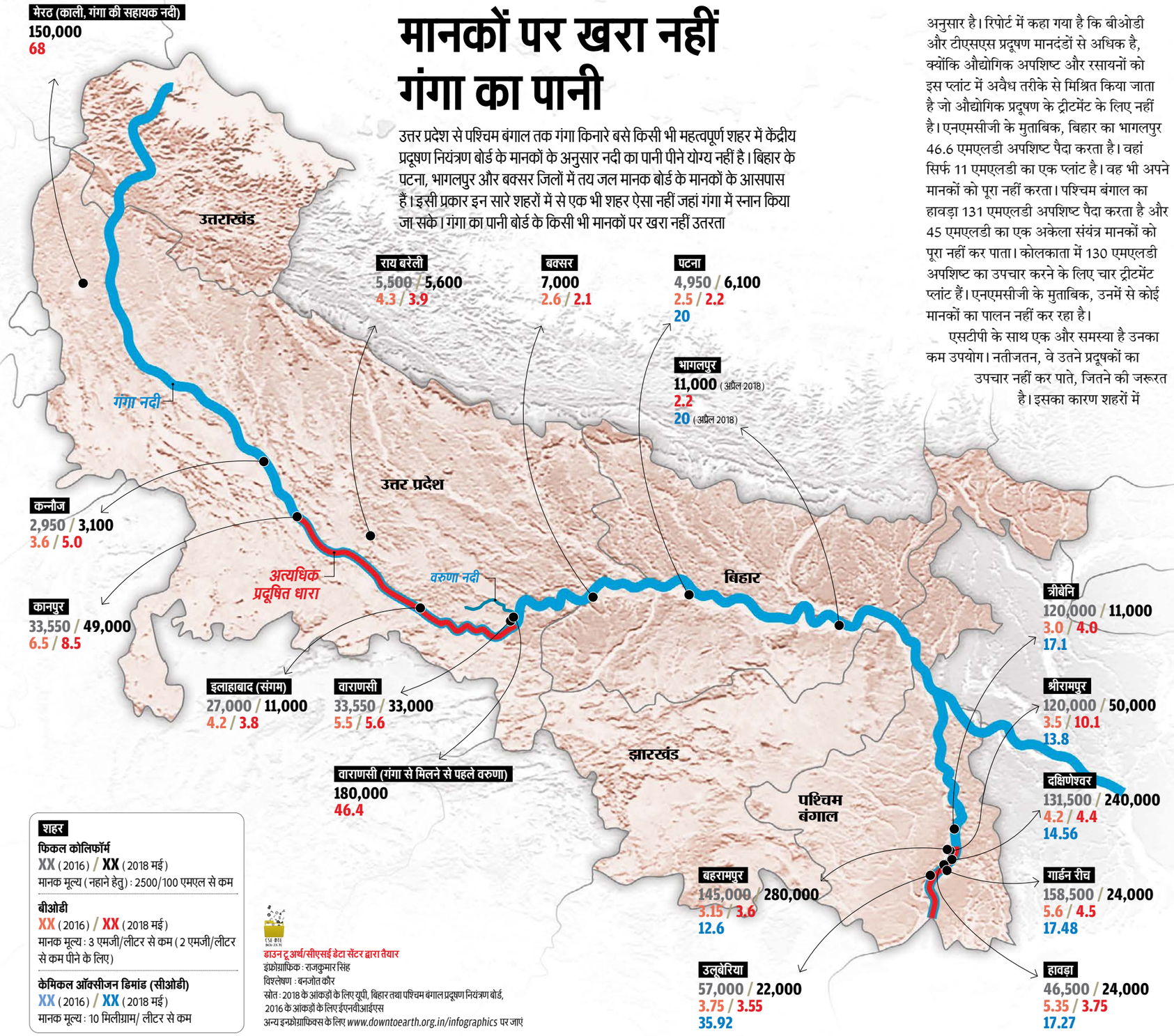

अनुसार है। रिपोर्ट में कहा गया है कि बीओडी और टीएसएस प्रदूषण मानदंडों से अधिक है, क्योंकि औद्योगिक अपशिष्ट और रसायनों को इस प्लांट में अवैध तरीके से मिश्रित किया जाता है जो औद्योगिक प्रदूषण के ट्रीटमेंट के लिए नहीं है। एनएमसीजी के मुताबिक, बिहार का भागलपुर 46.6 एमएलडी अपशिष्ट पैदा करता है। वहां सिर्फ 11 एमएलडी का एक प्लांट है। वह भी अपने मानकों को पूरा नहीं करता। पश्चिम बंगाल का हावड़ा 131 एमएलडी अपशिष्ट पैदा करता है और 45 एमएलडी का एक अकेला संयंत्र मानकों को पूरा नहीं कर पाता। कोलकाता में 130 एमएलडी अपशिष्ट का उपचार करने के लिए चार ट्रीटमेंट प्लांट हैं। एनएमसीजी के मुताबिक, उनमें से कोई मानकों का पालन नहीं कर रहा है।

एसटीपी के साथ एक और समस्या है उनका कम उपयोग। नतीजतन, वे उतने प्रदूषकों का उपचार नहीं कर पाते, जितने की जरूरत है। इसका कारण शहरों में सीवेज नेटवर्क की कमी है। अगर नए एसटीपी बनते भी हैं, तो सीवेज नेटवर्क के बिना इस उद्देश्य को पूरा नहीं कर सकेंगे। गौरतलब है कि नमामि गंगे के बाद 2,071 किलोमीटर नई सीवर लाइन परियोजनाओं को मंजूरी दी गई थी जो अभी सिर्फ 66.85 किमी ही बनी है। बिहार के गंगा बेसिन शहरों में 1,723 किमी सीवर लाइन बिछाई जानी थी। इसमें नमामि गंगे के पहले और बाद के लक्ष्य को शामिल किया गया है। हालांकि, अगस्त के अंत तक केवल 206 किमी की दूरी तक ही सीवर लाइन बिछाई जा सकी है।

इसने स्पष्ट रूप से एसटीपी की उपयोगिता को कम किया है। कानपुर के जाजमऊ में घरेलू अपशिष्ट जल उपचार संयंत्र की क्षमता 130 एमएलडी है। लेकिन अप्रैल-मार्च का औसत केवल 60.5 एमएलडी था। एनएमसीजी के मुताबिक, कानपुर के सभी मौजूदा संयंत्रों में 414 एमएलडी की क्षमता है लेकिन केवल 230 एमएलडी ही उपचारित हो पाता है। उत्तर प्रदेश स्टेट एन्युअल एक्शन प्लान 2017-20 के मुताबिक, कानपुर के केवल 40 प्रतिशत क्षेत्र ही सीवर लाइन से जुड़ा है। पटना में 109 एमएलडी के चार उपचार संयंत्र हैं, लेकिन केवल 32 एमएलडी क्षमता का ही काम हो रहा है।

किसी भी शहर के लिए, एसटीपी को उसके सीवेज से निकलने वाले अपशिष्ट के अनुसार डिजाइन किया जा रहा है। 2016 में इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली में रघु दयाल द्वारा लिखे गए एक पेपर का कहना है कि "सीवेज से निकलने वाले अपशिष्ट का आकलन इस धारणा पर आधारित है कि आपूर्ति किए गए पानी का 80 प्रतिशत अपशिष्ट जल के रूप में वापस आ जाता है। सीपीसीबी द्वारा संकलित कुछ हालिया आंकड़ों से पता चलता है कि गंगा में अपशिष्ट जल का वास्तविक निर्वहन 6,087 एमएलडी है, जो अपशिष्ट पानी के अनुमानित निर्वहन से 123 प्रतिशत अधिक है।" वाराणसी के संकटमोचन फाउंडेशन (एसएमएफ) के अध्यक्ष वीके मिश्रा कहते हैं कि गणना की पद्धति दोषपूर्ण है। एसएमएफ को 2010 में अस्सी क्षेत्र में 35 एमएलडी के एसटीपी निर्माण का कार्य दिया गया था। मिश्रा, जो आईआईटी-बीएचयू में प्रोफेसर भी हैं, कहते हैं, "हमने अस्सी नाली का तीन दिवसीय अध्ययन किया और हमारे आश्चर्य का ठिकाना नहीं था। हमने पाया कि अपशिष्ट जल का निर्वहन 63.5 एमएलडी था। यह 2010 की बात है।" मिश्रा का कहना है कि जब पूरे शहर में पाइप से पानी की आपूर्ति नहीं हो रही है, तो सीवेज से निकलने वाले अपशिष्ट की गणना के लिए मानदंड कैसे बन सकता है। मिश्रा के तर्क को यूपी राज्य वार्षिक कार्य योजना 2017-2020 से भी समर्थन मिलता है, जो कहता है कि वाराणसी में पाइप जल आपूर्ति का कवरेज 60 प्रतिशत से कम है। वास्तव में कानपुर और इलाहाबाद में यह क्रमशः 60 प्रतिशत और 40 प्रतिशत से भी कम है। कानपुर, इलाहाबाद और वाराणसी पूरे गंगा बेसिन प्रदूषण के हॉट स्पॉट हैं।

लेकिन घरेलू सीवेज ही सिर्फ चिंता का कारण नहीं है। उद्योग, विशेष रूप से, कानपुर के जाजमऊ क्षेत्र के टैनरीज (चर्म उद्योग) को लेकर सुप्रीम कोर्ट और नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल ने कई बार गुस्सा प्रदर्शित किया है। उत्तर प्रदेश सरकार ने 30 मार्च, 2017 को एनजीटी से कहा कि सैद्धांतिक रूप से, उसने जाजमऊ से टैनेरी उद्योगों को स्थानांतरित करने का निर्णय लिया है और जिस स्थान पर उन्हें स्थानांतरित किया जाना है, उस पर प्रभावी तरीके से विचार किया जा रहा है। यह अनिवार्य है कि टैनरीज क्रोमियम का उपचार अपने स्वयं के छोटे प्लांट या क्लस्टर में बने प्लांट के जरिए करें और फिर अपशिष्ट को सरकार द्वारा संचालित कॉमन एफ्लुएंट ट्रीटमेंट प्लांट (सीईटीपी) में स्थानांतरित करे, परंतु ऐसा हो नहीं रहा। इस बात की पुष्टि एनजीटी ने अपने 13 जुलाई 2017 के आदेश में की है।

अप्रैल-मई 2018 की कानपुर जल निगम की रिपोर्ट, एनजीटी के अवलोकनों से मेल खाती है। यह कहती है कि सीईटीपी में आने वाला टैनरीज के अपशिष्ट में क्रोमियम की सान्द्रता प्रति लीटर 110.2 मिलीग्राम है। *डाउन टू अर्थ* टीम ने सीईटीपी का दौरा किया, जहां विशेषज्ञों ने टीम को दिखाया कि कैसे क्रोमियम ने अपशिष्ट जल पर एक अलग परत बना ली थी और इसे नंगी आंखों से देखा जा सकता था। प्लांट में कई अन्य प्रकार के कचरे आ रहे थे, जिसे टैनरीज को खुद ही उपचारित करना था। प्रति 100 मिलीलीटर 175 बीओडी के डिजाइन पैरामीटर और टीएसएस 200 मिलीग्राम/लीटर के मुकाबले इनमें प्रदूषक की मात्रा क्रमशः 203 मिलीग्राम/लीटर और 253 मिलीग्राम/लीटर थी।

जाजमाऊ और पास के गांवों की यात्रा डरावनी तस्वीर प्रस्तुत करती है। वाजिदपुर गांव में गंगा तट पर चार टैनरीज *डाउन टू अर्थ* टीम को दिखीं। यहां किसी भी टैनरी के बाहर कोई बोर्ड नहीं था और वे लगभग गुमनाम रूप से चल रही थीं। यह जाजमऊ प्लांट के कुछ किलोमीटर पूर्व में है। देखा जा सकता है कि वे गंगा में अपशिष्ट बहा रही हैं। छोटू निशाद ने अपनी छिद्रित त्वचा को दिखाते हुए कहा, "आउटलेट पाइप धूल फेंकते

फोटो: विकास चौधरी

हैं जिसे हम रोजाना श्वास में भरते हैं।" *डाउन टू अर्थ* ने जिन भी परिवारों से बात की वहां बाल झड़ने, त्वचा संक्रमण, हृदय समस्याएं, सांस लेने की समस्या आम मिलीं। एक अन्य ग्रामीण जगदीश कहते हैं, "यदि हम ढक कर न रखें तो गिलास में रखा पानी लाल हो जाता है। अधिकारी हमारी सुनते ही नहीं हैं।"

जाजमऊ टैनरीज से कुछ किलोमीटर दूर शेखपुर गांव है। 50 वर्षीय ग्रामीण लक्ष्मी शंकर निषाद अपने बाएं पैर को दिखाते हैं, जिसकी त्वचा लगभग छिल गई है। वह कहते हैं, "हम त्वचा संक्रमण से पीड़ित हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि टैनरीज सीधे अपने अपशिष्ट को नालियों में बहा देती हैं और यह भूजल के साथ मिश्रित हो गया है, जो संक्रमित हो गया है।" डीटीई पास के टैनरी से सीधे जुड़े नालियों में अपशिष्ट जल देख सकता था। रसायनों ने नाली को भर दिया था। टैनरीज से बाहर आने वाली धूल ने क्षेत्र के लगभग सभी खंभे पर जंग लगा दिया था। इस वजह से जाजमऊ के कई दुकानों के लोहे के दरवाजे गल चुके थे। एक अन्य ग्रामीण, 45 वर्षीय श्रीकृष्ण कहते हैं, "गांव के लोग नपुंसक हो रहे हैं और जब वे अस्पताल जा रहे हैं, तो डॉक्टर उन्हें क्षेत्र छोड़ने के लिए कहते हैं। हम यह कैसे कर सकते हैं?" वह कहते हैं कि हमारा घर है, छोटी खेती है, ये सब कैसे छोड़ कर जा सकते हैं। वह पास के खेत में उगाए गए चारा को दिखाते हैं। इस चारे को दो अलग-अलग खेतों में उगाया गया था। एक खेत को भूजल से पानी दिया गया था और दूसरे को वर्षा जल। जो चारा भूजल से उगाया गया था, वह करीब-करीब जल गया था। उन्होंने समझाया कि भूजल में मिले से रसायनों ने इसे जला दिया था। उन्होंने भैंसों को भी दिखाया जिनकी पूंछ सड़ गई थी। भैंस भी भूजल पीती हैं और रसायनों ने उन्हें ऐसा बना दिया है। अगले गांव में भी लोगों के पास ऐसी ही कहानियां थीं। 80 वर्षीय नानू यादव दो किशोर-अंकित और संध्या को दिखाते हैं जिनके सिर पर भूरे रंग की कुछ झुर्रियां हैं। वह कहते हैं, "उनके सभी बाल झड़ गए हैं और कोई नया बाल नहीं आ रहा है। दवाएं भी कुछ काम नहीं करतीं। डॉक्टरों का कहना है कि यह भूजल के संपर्क में आने से हुआ है। स्थिति 10 साल पहले इतनी खराब नहीं थी।" गांव के लोगों ने भी कमजोर नजर, गैस्ट्रिक समस्याओं और अन्य स्वास्थ्य समस्याओं की शिकायत की।

ऐसा नहीं है कि उनकी समस्याओं का डॉक्युमेंटेशन नहीं हुआ है। एनजीटी के नोटिस में यह लाया गया है कि जाजमऊ, राखीमांडी और खानपुर गांव जैसे अन्य स्थानों पर खुले में क्रोमियम सल्फेट डंप बनाए गए हैं। एनजीटी ने पिछले साल के आदेश में इसे लिखा भी था। सीपीसीबी ने निर्देश के बाद इस साइट का अध्ययन किया। सीपीसीबी की पिछले साल की रिपोर्ट के मुताबिक, "अनुमानित 60,000 टन क्रोम अपशिष्ट और 2 लाख टन मिट्टी इस डंप के आसपास फैली है। इसका भूजल और पर्यावरण पर दीर्घकालिक अपरिवर्तनीय प्रभाव पड़ा है।" सीपीसीबी ने 140 करोड़ रुपए की लागत से साइट के उपचार के लिए अल्पकालिक और दीर्घकालिक उपायों के सुझाव दिए। इसके लिए वित्त पोषण स्रोत अभी तक पहचाना जाना बाकी है।

गंगा की सफाई लंबी सुनवाई के बाद, एनजीटी ने 13 जुलाई, 2017 को यूपी सरकार को निर्देश दिया कि या तो वह 9 एमएलडी के मौजूदा सीईटीपी के अलावा एक नया सीईटीपी बनाने के लिए योजना तैयार करे या उद्योग को स्थानांतरित करे। इसने सरकार को यह सुनिश्चित करने का भी निर्देश दिया कि कचरे को सीईटीपी तक पहुंचाने से पहले क्रोमियम का अनिवार्य रूप से ट्रीटमेंट किया जाए। इसके लिए सरकार द्वारा चलाए जा रहे मौजूदा सीआरपी को अपग्रेड किया जाए या टैनरीज का अपना स्वयं का क्रोमियम ट्रीटमेंट प्लांट (सीटीपी) हो। इस पर पिछले महीने एनएमसीजी ने एनजीटी में जवाब दिया कि कानपुर नगर निगम द्वारा सीआरपी उन्नयन की योजना बनाई गई है। यह भी सूचित किया गया कि 20 एमएलडी सीईटीपी को मंजूरी दे दी है। इससे जाजमऊ में कुल सीईटीपी क्षमता 29 एमएलडी तक पहुंच जाएगी जबकि सेंट्रल लेदर रिसर्च इंस्टीट्यूट ने 2010 में कहा था कि जाजमऊ में टैनरीज से 50 एमएलडी अपशिष्ट निकलता है।

टैनरीज से निपटने के अलावा एनजीटी ने अपने पिछले साल के 543 पृष्ठों के फैसले में गंगा, रामगंगा, काली और पांडु नदियों में जाने वाली 86 नालियों से संबंधित 100 से अधिक निर्देश जारी किए थे। 80 के दशक से गंगा बचाने की मुहिम में जुटे उच्चतम न्यायालय के अधिवक्ता एमसी मेहता ने बताया, "सरकारी एजेंसियों ने ज्यादातर निर्देशों के संबंध में अनुपालन रिपोर्ट जमा की, लेकिन मैंने इस क्षेत्र से जो सूचना इकट्ठा की वह सरकार के जवाब से अलग है।" मेहता की ही याचिका पर एनजीटी ने आदेश पारित किया।

आदेश पारित होने के बाद यह देखने के लिए कई सुनवाई हुईं कि आदेशों का अनुपालन किया जा रहा है या नहीं। अंतिम सुनवाई 6 अगस्त 2018 को हुई। अनुपालन की स्थिति पर टिप्पणी करते हुए एनजीटी ने कहा, "हालांकि ट्रिब्यूनल के 13 जुलाई 2017 के फैसले के आलोक में दिशानिर्देशों के अनुपालन पर प्रगति का दावा किया जा रहा है लेकिन हमें अब भी मीलों आगे जाना है। मौजूदा प्रगति हमारी पूर्ण उम्मीद को पूरा नहीं करती।" एनजीटी ने निगरानी के लिए इलाहाबाद उच्च न्यायालय के एक पूर्व न्यायाधीश और अन्य लोगों को मिलाकर एक चार सदस्यीय पैनल का गठन किया। एनजीटी ने उत्तर प्रदेश के मुख्य सचिव को सभी बुनियादी सुविधाएं प्रदान करने के लिए पत्र लिखा। केस की अगली सुनवाई फरवरी 201 9 में होनी है। *डाउन टू अर्थ* ने संबंधित हाईकोर्ट न्यायाधीश अशोक टंडन से 19 सितंबर को बात की थी। उन्होंने कहा, "समिति 24 सितंबर को चार्ज लेगी और इसके बाद ही वह कुछ बता सकेंगे।"

गंगा सफाई के अलावा, नमामि गंगे वनीकरण के बारे में भी बात करता है। यह नमामि गंगे की एक महत्वपूर्ण गतिविधि भी है क्योंकि इससे भूजल रिचार्ज में मदद मिलती है। सरकार वनीकरण पर करोड़ों रुपए खर्च कर चुकी है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में वनस्पति विज्ञान विभाग के सहायक प्रोफेसर प्रमोद शर्मा लगे हुए पौधे दिखाते हुए कहते हैं "सरकार ने कचनार और गुलमोहर जैसे फूलों के पौधे लगाए जबकि जल संचय के लिए हमें पाकड़, गूलर, नीम और पीपल के पेड़ों की जरूरत थी। इन पौधों से केवल सुंदरता बढ़ाई जा सकती है"

31 अगस्त 2018 तक सरकार ने नमामि गंगे के तहत 236 परियोजनाओं को मंजूरी दी, जिसमें से केवल 63 ही पूरी हो पाई हैं। सीवेज इंफ्रास्ट्रक्चर की 114 में से 27 परियोजनाएं ही पूरी हुई हैं

कम पानी, अधिक प्रदूषण

नदी का प्राथमिक चरित्र है बहते रहना। यदि नदी सही मात्रा में पानी के साथ नहीं बहती तो यह स्वयं को कभी साफ कर ही नहीं सकती। किसी भी सफाई कार्यक्रम के लिए यह बुनियादी विज्ञान और बुनियादी सिद्धांत भी है। लेकिन गंगा में कम से कम पानी बह रहा है। इसका प्रवाह कई स्थानों पर बाधित हुआ

है। गंगा बेसिन में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से 795 छोटे और बड़े बांध हैं, जो इसके प्रवाह को अवरुद्ध करते हैं। विशेष रूप से उत्तराखंड और उत्तर प्रदेश में स्थित जलविद्युत परियोजनाओं, बैराज और नहरों ने गंगा को बर्बाद कर दिया है। इलाहाबाद स्थित एक कार्यकर्ता विजय द्विवेदी ने गंगा सेना का गठन किया है, जो नियमित रूप से नदी की सफाई करती है। वह कहते हैं कि केवल मॉनसून में ही गंगा में पानी का स्तर काफी अच्छा रहता है। वह कहते हैं, "अप्रैल या मई में तो इसमें घुटने तक पानी भी नहीं होता। लोग यहां गायों को चराते हैं, यह एक ड्राइविंग सीखने का क्षेत्र बन जाता है और बच्चों के लिए यह क्रिकेट मैदान।" वह कहते हैं, "हालांकि, योगी (यूपी के मुख्यमंत्री आदित्यनाथ योगी) ने घोषणा की है कि दिसंबर तक गंगा कुंभ मेला के लिए गंगा साफ हो जाएगी और उस महीने के दौरान अधिक पानी भी जारी किया जा सकता है। यह तब तक केवल कॉस्मेटिक उपाय साबित होगा, जब तक गंगा के प्रवाह को बहाल करने के लिए दीर्घकालिक उपाय नहीं किए जाते।"

संगम पर एक नाविक गोपाल निषाद ने बताया, प्रदूषकों को दूर कर सकती है और हमें इस तरह के बड़े कार्यक्रम की आवश्यकता नहीं होगी।"

वह यह भी कहते हैं कि अन्य नदियों के अलग, गंगा में तीन विशेष गुण होते हैं, जो इसके प्राकृतिक रूप से अपनाए जाने वाले पथ के कारण हैं। वह कहते हैं, "गंगा में औषधीय गुण हैं। ये गुण गंगा के रास्ते में औषधीय पौधों के कारण आते हैं। इसके अलावा गंगा जिस मार्ग से चलती है वह खनिजों समृद्ध है। इसमें बैक्टीरियोफेज है, जो बैक्टीरिया को मारता है। यदि आप गंगा के मार्ग को बैराज और नहर की वजह से मोड़ते हैं तो इसका प्राकृतिक मार्ग बदल जाता है। जाहिर है, इससे गंगा अपने गुणों को खो देगी।" वह कहते हैं कि प्रतिबंधों और प्रवाह में कमी के कारण, पानी की वेग कम हो जाता है और गाद बढ़ जाती है, इसलिए पानी के खनिज नदी तलहटी में जमा हो जाते हैं।

इन सभी सिद्धांतों को आईआईटी-खड़गपुर के अभिजीत मुखर्जी और अन्य द्वारा अगस्त 2018 में प्रकाशित एक पेपर के द्वारा समर्थन मिलता है। यह पेपर कहता है कि 1970 के दशक से शुरू हुए सिंचाई पंपिंग युग के मुकाबले 2016 का गंगा का बेसफ्लो अमाउंट लगभग 59 प्रतिशत कम हो गया। गंगा का कम होता जलस्तर घरेलू जल आपूर्ति, सिंचाई आवश्यकताओं, नदी परिवहन और पारिस्थितिकी आदि को खतरे में डाल सकती है। नदी के पानी में कमी का इस क्षेत्र में रहने वाली 10 करोड़ से अधिक आबादी के लिए खाद्य उत्पादन पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। 2015-17 की गर्मियों में भी गंगा के जलस्तर और प्रवाह में भारी कमी देखी गई।

मुखर्जी ने कहा कि आने वाले सालों में गंगा के जलस्तर में और गिरावट की आशंका है। नदी को प्रभावित करने के अलावा यह भूगर्भीय प्रक्रियाओं को भी प्रभावित करेगा और असाधारण वर्षा, भूस्खलन इत्यादि जैसी चीजों का कारण बन सकता है। वह कहते हैं, "पूर्वी बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल के अधिकांश हिस्सों में गंगा की धार सबसे कमजोर है क्योंकि इन क्षेत्रों में अत्यधिक मात्रा में भूजल से सिंचाई हो रही है।" उन्होंने कहा कि पहाड़ी इलाकों और उत्तराखंड का अध्ययन नहीं किया है। लेकिन उच्च पदस्थ लोगों ने उन्हें बताया है कि उत्तराखंड में जलविद्युत परियोजनाओं और नहर प्रणाली भी कहर बरपा रही हैं। इतना ही नहीं, देहरादून स्थित वाइल्ड लाइफ इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया की मई 2018 की रिपोर्ट के मुताबिक, इन परियोजनाओं के चलते गंगा डॉल्फिन के विलुप्त होने का खतरा मंडरा रहा है। साथ ही अन्य जलीय जैव विविधता भी खतरे में है।

आईआईटी-दिल्ली के प्रोफेसर एके गोंसाईं कहते हैं, "जलविद्युत परियोजनाओं को इस तरह डिजाइन किया जा सकता है कि वे कम पानी का उपभोग करे। इससे निवेश लागत बढ़ सकती है, लेकिन गंगा की सुरक्षा के लिए ऐसा किया जाना चाहिए। अब सरकार यह तय करे कि क्या इसे एक अनिवार्य नीति बनाया जाए या नहीं।" त्रिपाठी का कहना है कि गंगा पर किसी भी नई बड़ी परियोजनाओं की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। हालांकि छोटे बांध बनाए जा सकते हैं। पूरे गंगा बेसिन में लिफ्ट चैनलों के जरिए गंगा के पानी से फ्लड इरिगेशन किया जा रहा है। त्रिपाठी के

सीपीसीबी के कानपुर टैनरीज के एक क्षेत्र के अध्ययन के मुताबिक 60 हजार टन क्रोम और 2 लाख टन मिट्टी यहां के गांवों, राखीमंडी और खानपुर के डंप साइड्स के आसपास फैली है

"पानी की कमी के कारण गर्मी में मछली भी मर जाती है। घाटों पर आने वाले लोग आमतौर पर गर्मी में नाव की सवारी के लिए नहीं जाते हैं और इसका हम पर बुरा प्रभाव होता है।" निषाद पिछले 30 वर्षों से संगम के पास रह रहे हैं। वह कहते हैं, "कुछ साल पहले तक हम दूर से ही गंगा की लहरों की आवाज सुन लेते थे। इसका प्रवाह ही ऐसा था। हालांकि, चीजें अब तेजी से बिगड़ गई हैं।" वाराणसी में भी नाविकों ने ऐसी ही कहानी बताई। यूजीसी के एमेरिटस प्रोफेसर और बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के गंगा रिसर्च सेंटर के प्रभारी बीडी त्रिपाठी कहते हैं, "हमें सिर्फ गंगा को साफ करने की जरूरत नहीं है, बल्कि इसे बचाने की भी जरूरत है।" वह कहते हैं, "नदी में पानी का स्तर अभूतपूर्व दर से नीचे जा रहा है। यह नदी के अस्तित्व के लिए एक खतरा है। यदि प्रवाह बनाए रखा जाता है तो नदी अपने-आप 60-80 प्रतिशत कार्बनिक

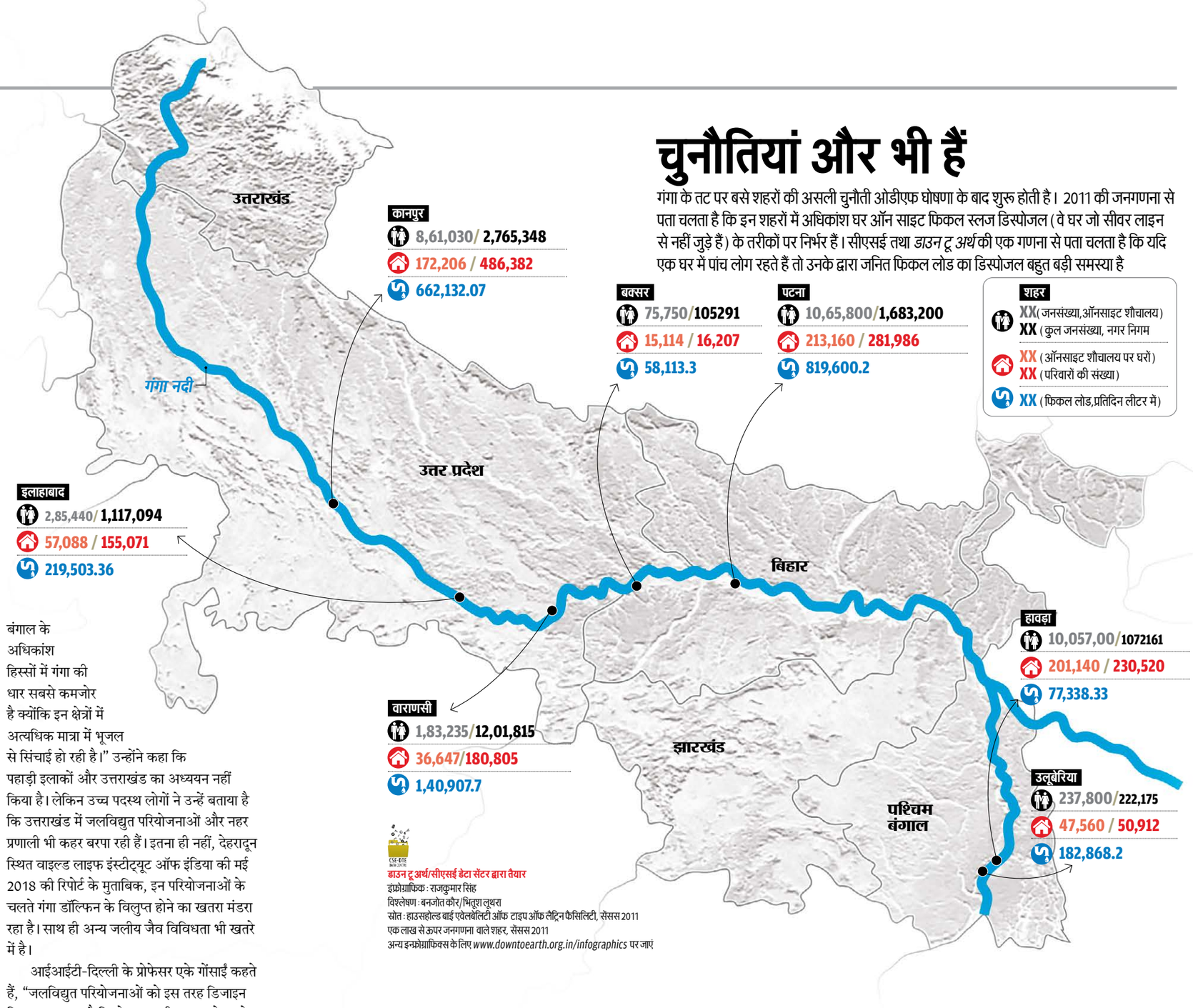

चुनौतियां और भी हैं

गंगा के तट पर बसे शहरों की असली चुनौती ओडीएफ घोषणा के बाद शुरू होती है। 2011 की जनगणना से पता चलता है कि इन शहरों में अधिकांश घर ऑन साइट फिकल स्लज डिस्पोजल (वे घर जो सीवर लाइन से नहीं जुड़े हैं) के तरीकों पर निर्भर हैं। सीएसई तथा *डाउन टू अर्थ* की एक गणना से पता चलता है कि यदि एक घर में पांच लोग रहते हैं तो उनके द्वारा जनित फिकल लोड का डिस्पोजल बहुत बड़ी समस्या है

डाउन टू अर्थ/सीएसई डेटा सेंटर द्वारा तैयार
इंफ्रोग्राफिक : राजकुमार सिंह
विश्लेषण : बनजोत कौर/भितृश लूथरा
स्रोत : हाउसहोल्ड बाई एवैलबैलिटी ऑफ टाइप ऑफ लैट्रिन फैसिलिटी, सेंसस 2011
एक लाख से ऊपर जनगणना वाले शहर, सेंसस 2011
अन्य इन्फ्रोग्राफिक्स के लिए *www.downtoearth.org.in/infographics* पर जाएं

अनुसार, "सिंचाई के इस तरीके के कारण 80% से अधिक पानी बर्बाद हो जाता है। यदि ड्रिप इरिगेशन जैसी सूक्ष्म सिंचाई तकनीकियों को अपनाया जाता है, तो बर्बादी को कम हो सकती है। उल्लेखनीय है कि एनजीटी ने अपने 2017 के आदेश में कहा कि जब तक कोई मानक तय न हो जाए, तब तक इस बात को सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि गंगा का जलस्तर अपने मूल प्रवाह से 20 प्रतिशत रहे।

स्वच्छ भारत से नुकसान?

सरकारी दावों के अनुसार, गंगा तट पर स्थित 99.93 प्रतिशत गांवों को ओडीएफ (खुले में शौच मुक्त) घोषित किया जा चुका है। स्वच्छ भारत मिशन (ग्रामीण) पोर्टल के अनुसार, 17 सितंबर 2018 तक 4,000 से अधिक गांवों में 20.7 लाख से अधिक शौचालयों का निर्माण किया गया है। एक तरफ जहां प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी को स्वच्छ भारत मिशन के तहत लक्ष्य उपलब्धि के लिए याद किया जाएगा, वहीं गंगा सफाई के उनके दूसरे सबसे बड़े वादे पर इसका असर पड़ता दिख रहा है। इलाहाबाद में गंगा के किनारे बसे छपरी गांव के राशिद अली कहते हैं, "मेरे घर में शौचालय है लेकिन ट्विन पिट के कचरे से ओवरफ्लो हो रहा है। अधिकारी अक्सर शौचालय का उपयोग न करने के लिए मुझे डांटते हैं। लेकिन वे उपयोग करने योग्य नहीं हैं। मैं इसका इस्तेमाल

कैसे करूं?" वह और उनके परिवार के सदस्य गंगा के पास शौच के लिए जाते हैं। ट्विन पिट प्रणाली के तहत शौचालय की सीट के नीचे दो गड्ढे बनाए जाते हैं। एक गड्ढे में वेस्ट चार-पांच साल तक रहना चाहिए। उसके बाद जब वह भर जाए उसे बंद कर दिया जाता है। जब तब वह वेस्ट खाद बनता है, तब दूसरे गड्ढे का इस्तेमाल होता है।

सीएसई द्वारा किए गए एक अध्ययन के मुताबिक, सर्वेक्षण किए गए अधिकांश शहरों में ट्विन पिट तकनीक थी, जो निचले इलाकों के लिए ठीक नहीं है। उदाहरण के लिए, पश्चिम बंगाल के गंगा बेसिन शहर, बनगांव के जुलाई 2017 की एक शिट फ्लो डायग्राम रिपोर्ट में कहा गया है कि सभी घर जो ऑनसाइट स्वच्छता प्रणाली (ओएसएस) पर निर्भर हैं और जो सीवर नेटवर्क से जुड़े नहीं हैं, वहां सबसे प्रचलित रोकथाम गड्ढा प्रणाली है। आश्चर्य की बात नहीं है कि सीएजी ने दिसंबर 2017 में नमामि गंगे की अपनी ऑडिट रिपोर्ट में ओडीएफ के दावों पर सवाल खड़े किए थे। सीएजी की रिपोर्ट के अनुसार, बिहार में 228 गांवों में से किसी का भी सत्यापन नहीं हुआ था, उत्तर प्रदेश में ओडीएफ घोषित किए गए 1,022 गांवों में से केवल 108 गांवों का सत्यापन किया गया। गंगा में बढ़ता फिकल कोलिफॉर्म का स्तर इस बात द्योतक है कि मानव मल की मात्रा गंगा के पानी में कम नहीं है। गंगा बेसिन के गांव को ओडीएफ बनाने का उद्देश्य गंगा में फिकल कोलिफॉर्म स्तर में सुधार करना था। गंगा बेसिन पर बसे पांच राज्यों के प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों द्वारा प्रदत्त आंकड़ों के मुताबिक, मई 2018 में गंगा बेसिन शहरों में फिकल कॉलिफॉर्म का स्तर 2500 से 2,40,000 प्रति 100 एमएल था जबकि मानक 2,500 प्रति एमएल का है। यूपी, बिहार और पश्चिम बंगाल में फिकल कोलिफॉर्म स्तर क्रमशः 2,500-15,000, 6,100-31,000 और 1,10,000-2, 80,000 प्रति 100 एमएल था। इसी प्रकार, यूपी, बिहार और पश्चिम बंगाल में कुल कोलिफ़ॉर्म का स्तर क्रमशः 5, 200-2,80,00; 14,000-22,000 और 17,000-3, 50,000 प्रति 100 एमएल था जबकि 5,000 प्रति 100 एमएल का है।

सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरमेंट द्वारा की गई गणना के मुताबिक, अगर गंगा बेसिन के पांच राज्य उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड और पश्चिम बंगाल पूर्ण ओडीएफ बन जाते हैं तो प्रति दिन लगभग 180 मिलियन लीटर मल कचरा उत्पन्न होगा। यदि उचित फिकल कचरा प्रबंधन नहीं होता है, तो यह सब गंगा में जाएगा। आगे चिंता का कारण यह होना चाहिए कि मल (फिकल स्लज), सीवेज से भी अधिक प्रदूषित होगा। जहां सीवेज का बीओडी 150-300 मिलीग्राम/लीटर है। वहीं मल कचरा में यह प्रति लीटर 15,000-30,000 मिलीग्राम होगा। लिंड्रा स्ट्रैंड ने अपनी पुस्तक में कहा है कि मल कचरा में कार्बनिक पदार्थ, कुल ठोस और अमोनियम आमतौर पर वेस्ट वाटर की तुलना में 10 या 100 गुना अधिक होता है। विशेषज्ञों का कहना है कि शौचालयों के निर्माण के दौरान शायद ही कभी मल कचरा प्रबंधन पर विचार किया गया था।

फिकल स्लज एंड सेप्टेज मैनेजमेंट (एफएसएसएम) 2017 पर बनी राष्ट्रीय नीति भी उन चुनौतियों की बात करती है, जो अधिक से अधिक शौचालयों के निर्माण से पैदा होंगी।" एसबीएम के तहत अगले कुछ वर्षों में शहरी परिवारों को शौचालय सुविधाएं मिलेंगी, इसलिए संभव है कि कई लोग सीवेज सिस्टम उपलब्ध नहीं होने पर शहरों में ट्विन पिट शौचालयों और सेप्टिक टैंक पर निर्भर होंगे। इस प्रकार, एसबीएम के तहत जब मानव अपशिष्ट की रोकथाम काफी हद तक संभव हो सकेगी, इसका उपचार अभी से एक बड़ी चुनौती बन गया है। पर्याप्त सुरक्षित और टिकाऊ स्वच्छता की अनुपस्थिति में, स्वास्थ्य संबंधी बीमारियां, पानी और मिट्टी के गंभीर प्रदूषण के रूप में कई भारतीय शहर पहले से ही परिणाम भुगत रहे हैं।"

एक सेवानिवृत्त आईएएस अधिकारी दीपक सानन कहते हैं, "गंगा बेसिन गांवों में फिकल स्लज के लिए केवल शौचालय नहीं बल्कि फिकल सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट (एफएसटीपी) की आवश्यकता थी। अब तक मैंने नहीं सुना है कि ऐसे किसी भी क्षेत्र में एफएसटीपी स्थापित किए गए हैं।"

दिल्ली में अंतरराष्ट्रीय गैर-लाभकारी संस्था के साथ काम कर रहे एक स्वच्छता विशेषज्ञ ने कहा, "फिकल स्लज के प्रबंधन के लिए कोई रणनीति नहीं बनाई गई। शौचालयों के निर्माण के साथ-साथ कई हस्तक्षेपों की आवश्यकता थी, जो स्पष्ट रूप से नहीं हुआ।" इंटरनेशनल वाटर मैनेजमेंट इंस्टीट्यूट (आईडब्ल्यूएमआई) के फिकल स्लज मैनेजमेंट विभाग के प्रमुख रविशंकर टी कहते हैं, "हमें ब्लॉक स्तर पर या ग्रामीणों के समूह के लिए छोटे एफएसटीपी की आवश्यकता थी। हाई वाटर टेबल वाले क्षेत्रों के लिए, हमें स्लज ड्राइंग बेड की आवश्यकता होती है जो ब्लॉक या ग्राम पंचायतों के समूह के लिए बनाए जा सकते हैं। ये बांग्लादेश, अफ्रीका और भारत के कुछ शहरों में आम हैं।" लापरवाही के कारण भी सेप्टिक टैंक काम नहीं कर रहे हैं। गंगाघाट, मुगलसराय और उन्नाव जैसे तीन गंगा बेसिन शहरों का अध्ययन करने के बाद जनवरी 2017 में प्रकाशित आईडब्ल्यूएमआई पेपर ने कहा, "ज्यादातर घर (गंगाघाट में 97% तक) सेप्टिक टैंक पर भरोसा करते हैं, लेकिन इन्हें ठीक तरह से रखा नहीं जाता। प्रत्येक 10-15 साल में फिकल स्लज एकत्र किया जाता है, भले ही हर 3 साल में ऐसा किया जाना जरूरी हो। नतीजतन, सेप्टिक टैंक जो वेस्ट वाटर से 60 प्रतिशत सस्पेंडेड सॉलिड और 40 प्रतिशत ऑर्गेनिक वेस्ट हटा सकते हैं, नहीं हटा पा रहे।"

यह पेपर एक और समस्या पर प्रकाश डालता है और कहता है कि शहरों का प्रदूषण छोटी और खुली नालियों के नेटवर्क से बहता है, जो अंत में गंगा में मिलता है। उत्तर प्रदेश के बिठूर के पास ब्रहवतघाट पर रहने वाले 80 साल के गोविंद प्रसाद दीक्षित ने दिखाया कि कैसे घाट के पास 100 से ज्यादा घरों से निकलने वाली खुली नाली सीधे गंगा में जा रही है। वह बताते हैं, "अधिकारी यहां कई बार आए हैं। वे सर्वेक्षण करने घाट पर जाते हैं और सौंदर्यीकरण का काम देखते हैं लेकिन इस नाली पर कभी ध्यान नहीं देते।" हालांकि यह पेपर गंगा बेसिन शहरों के फिकल स्लज प्रबंधन के लिए एक समाधान प्रदान करता है। यह कहता है कि सीवर और ट्रीटमेंट प्लांट लगाने की लागत 17 बिलियन अमरीकी डालर से अधिक हो सकती है और हर साल संचालन और रखरखाव पर सैकड़ों लाख रुपए लगेंगे। यह कहता है, "ऐसी परियोजनाओं के लिए भूमि मिलना भी एक मुद्दा है। यदि सेप्टेज को मशीन से उठाने के बाद उसका ट्रीटमेंट और पुनः उपयोग किया जाए तो यह फायदे का सौदा है। इसकी (250 से 2,000 रुपए/व्यक्ति) लागत पारंपरिक सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट्स (5,000 रुपए/व्यक्ति) के मुकाबले कम है।

फोटो: विकास चौधरी

गंगा सफाई का अर्थशास्त्र

गंगा बेसिन नदी प्रबंधन योजना तैयार करने के लिए बने सात आईआईटी के संघ की रिपोर्ट 2013 में आई। अपनी अंतरिम रिपोर्ट में इसने कहा है कि किसी नगरपालिका में उत्पन्न होने वाले वेस्ट वाटर को इस हद तक ट्रीट किया जा सकता है कि वह पुनः उपयोग लायक बनाया जा सके। इसका खर्च एक पैसा प्रति लीटर उस समय बताया गया। नमामि गंगे की पूरी लागत 22,000 करोड़ रुपए है। हालांकि संसदीय स्थायी समिति की एक रिपोर्ट के मुताबिक, परियोजना के समय पर पूरे न होने के कारण नमामि गंगे कार्यक्रम की लागत बढ़ जाएगी। कितनी बढ़ेगी, इसका अनुमान दिसंबर 2018 के बाद ही लगाया जा सकेगा। नमामि गंगे के दायरे में आने के बाद भी 2011 की शुरुआत में स्वीकृत कई परियोजनाएं अपनी समयसीमा पर पूरी नहीं हो सकीं। जापान इंटरनेशनल कोऑपरेशन एजेंसी (जीका) की सहायता से वाराणसी में एसटीपी का निर्माण किया जाना था। इसे 14 जुलाई, 2010 को 496 करोड़ रुपए की मंजूरी दे दी गई थी और काम 2017-18 में पूरा होने की समयसीमा तय की गई थी। कुछ हिस्सों का काम 2016 में पूरा किया जाना था। *डाउन टू अर्थ* के पास मौजूद दस्तावेजों से पता चलता है कि इस प्लांट की प्रगति दिसंबर 2014 शून्य थी। जीका से टेक्निकल बिड पर सहमति का इंतजार था। दिसंबर 2015 में स्थिति जस की तस थी। उसके बाद एसटीपी का निर्माण निर्माण शुरू हुआ और दिसंबर 2016 तक 34 प्रतिशत काम पूरा हुआ। अंतोगत्वा सरकार ने इस प्लांट का संशोधित प्लान जारी किया और परियोजना का व्यय 641.19 करोड़ रुपए हो गया। एक बार फिर समयसीमा को जून 2018 तक बढ़ा दिया गया। यह उत्तर प्रदेश का अकेला उदाहरण नहीं है।

गढ़मुक्तेश्वर में 9 एमएलडी क्षमता का एसटीपी अप्रैल 2018 में स्थापित हुआ जबकि समयसीमा 2015-16 निर्धारित थी। इसी तरह की कहानी बुलंदशर एसटीपी की भी है। बिहार में भी कुछ ऐसा ही देखने को मिलता है। 8 मार्च 2010 को राज्य के बेगूसराय जिले के लिए 2015-16 की समयसीमा के साथ 65 करोड़ रुपए की लागत से 17 एमएलडी का एसटीपी मंजूर किया गया था। परियोजना विश्व बैंक द्वारा सहायता प्राप्त थी। एनएमसीजी दस्तावेजों से पता चलता है कि दिसंबर 2016 तक निर्माण मोर्चे पर कोई प्रगति नहीं हुई। दिसंबर 2017 में, निविदा रद्द कर दी गई थी। संशोधित एए एंड ईएस (एडमिनिस्ट्रेटिव अप्रूवल एंड एक्सपेंडिचर सेंक्शंड) मार्च 2018 में जारी हुआ। 230 करोड़ रुपए की बढ़ी हुई लागत के साथ इसकी समयसीमा भी बढ़ाई गई और अब यह विश्व बैंक की बजाय केंद्र सरकार की परियोजना बन गई। 8 मार्च 2010 को राज्य के हाजीपुर जिले के लिए 2015-16 की समयसीमा और 113 करोड़ रुपए की लागत पर 22 एमएमडी का एसटीपी मंजूर किया गया था। इस पर अभी तक कोई काम नहीं हुआ है। अब जनवरी 2020 की समयसीमा तय की गई है। ताजी निविदा के साथ 305 करोड़ रुपए की लागत से एक संशोधित एए एंड ईएस जारी किया गया है। पटना का करमलीचक एसटीपी अब 2020 तक 77 करोड़ के बदले 227 करोड़ रुपए की लागत से बनाया जाएगा, जबकि इसे 2010 में पांच साल की समयसीमा के साथ बनाया जाना था। बिहार में ऐसे कई उदाहरण और भी हैं।

इसके अलावा सीएजी ने दिसंबर 2017 की रिपोर्ट में नमामि गंगे के खराब वित्तीय प्रबंधन की भी ओर इशारा किया। इसमें कहा गया, "2014-15

से 2016-17 के दौरान केवल आठ से 63 प्रतिशत धन का उपयोग किया गया। केंद्र की नेशनल मिशन फॉर क्लीन गंगा (एनएमसीजी), विभिन्न राज्य गंगा समितियां और अन्य कार्यकारी एजेंसियों का क्रमशः 2,133.76 करोड़ रुपए, 422.13 करोड़ रुपए और 59.28 करोड़ रुपए का फंड इस्तेमाल नहीं हुआ।" 31 मार्च 2017 को स्वच्छ गंगा फंड में 198.14 करोड़ रुपए उपलब्ध थे। यह फंड गंगा की सफाई के लिए आम लोगों द्वारा सरकार को दिया गया है। हालांकि, एनएमसीजी इस फंड का एक रुपए भी इस्तेमाल नहीं कर सका और संपूर्ण राशि योजना को अंतिम रूप न देने पाने के कारण बैंकों में ही पड़ी रह गई। एनएमसीजी ने अगस्त 2017 को सीएजी को कहा था कि दिसंबर में 2016 में उसके प्राधिकरण के रूप में आने के बाद सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट्स (एसटीपी), इंटरसेप्शन एंड डाइवर्सन (आई एंड डी) के कामकाज और संबंधित परियोजनाओं के स्वीकृति की गति बढ़ गई। एनएमसीजी के मुताबिक, इसका नतीजा न केवल लक्ष्यों बल्कि वर्ष 2017-2018 के अंत तक उच्च व्यय के रूप में मिलने की भी संभावना है। हालांकि, एनएमसीजी के दस्तावेज बताते हैं कि 31 अगस्त, 2018 तक 22,323.37 करोड़ रुपए की परियोजनाओं को मंजूरी दे दी गई है, लेकिन सिर्फ 5,291 करोड़ रुपए का ही इस्तेमाल हुआ। कैग ने पाया, "इस प्रकार, एनएमसीजी का जवाब 2014-17 के दौरान कार्यों के निष्पादन की धीमी गति की ओर इशारा करता है और इसलिए धन का कम उपयोग होता है।"

नमामि गंगे के मीडिया आउटरीच पर अनावश्यक खर्च को लेकर भी सीएजी ने सवाल उठाए। डीएवीपी की नई विज्ञापन नीति के अनुसार, केंद्र सरकार के मंत्रालयों / विभागों / संलग्न और अधीनस्थ कार्यालयों / फील्ड कार्यालयों को केवल डीएवीपी के माध्यम से ही विज्ञापन देने हैं। इसके अलावा, डीएवीपी के माध्यम से किए गए विज्ञापनों के लिए मंत्रालयों / विभागों और अन्य क्लाइंट संगठनों को डीएवीपी 15 प्रतिशत छूट (एजेंसी कमीशन के समतुल्य) प्रदान करता है। सीएजी ने कहा, "हमने पाया कि एनएमसीजी ने देश भर के प्रमुख राष्ट्रीय समाचार पत्रों में प्रिंट विज्ञापन जारी करने के लिए अन्य विज्ञापन एजेंसियों को किराए पर लिया और 2.46 करोड़ (मार्च 2014 से जून 2016) का व्यय किया। इसमें 36.06 लाख रुपए एजेंसी कमिशन और 5.23 लाख रुपए सेवा कर के रूप में दिया गया था।" सीएजी ने कहा कि प्रिंट विज्ञापनों के लिए निजी एजेंसियों की सेवा सरकारी नीति का उल्लंघन थी और इसके परिणामस्वरूप एजेंसी कमीशन और सेवा कर के कारण 36.06 लाख और 5.23 लाख रुपए बर्बाद हुए।

विभागों और सरकार के बीच समन्वय

जल संसाधन मंत्रालय ने नमामि गंगे के तहत बेहतर कार्यान्वयन के लिए नौ मंत्रालयों के साथ समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए थे। इसमें रेलवे, एचआरडी, युवा, शिपिंग इत्यादि मंत्रालय शामिल थे। हालांकि, आज तक इसका कोई भी विवरण उपलब्ध नहीं है कि ये मंत्रालय कैसे काम कर रहे हैं। उमा भारती के मंत्री रहते मंत्रालय ने जालंधर के बलबीर सिंह सीचेवाल के साथ भी समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए थे। सीचेवाल ने कई वर्षों के प्रयास के बाद जालंधर की कालीबेन नदी को सामुदायिक प्रयासों से पुनर्जीवित किया था जिसके लिए वह विश्व विख्यात हैं। सीचेवाल ने डाउन टू अर्थ से बात करते हुए कहा, "शुरू में हमारे पास कुछ गांवों के मुखिया व अन्य लोग प्रशिक्षण के लिए आए थे। स्वयं उमा भारती भी हमारे प्रयासों को देखने आई थीं पर अब पिछले डेढ़ साल से कोई नहीं आया। हमें नहीं मालूम कि हमारे द्वारा दिए गए प्रशिक्षण का जमीनी स्तर पर क्या इस्तेमाल हुआ। मंत्रालय का कोई भी आदमी लंबे समय से हमारे संपर्क में नहीं है।" नमामि गंगे के बारे में पूछे जाने पर सीचेवाल ने कहा, "हमें नहीं लगता कि एसटीपी और घाट सौंदर्यीकरण तक सिमटी इस कार्यक्रम का कोई दूरगामी परिणाम होगा। जब तक समुदाय को इस कार्यक्रम में सक्रिय रूप से शामिल नहीं किया जाएगा, तब तक यह कार्यक्रम कभी सफल नहीं होगा।"

आईआईटी-कानपुर के प्रोफेसर विनोद तारे कहते हैं, "गंगा एक्शन प्लान में मंत्रालयों के बीच समन्वय की कमी थी। नमामि गंगे में भी कमी है। यदि विभाग पर्याप्त समन्वय नहीं करते हैं, तो कार्यक्रम वांछित उद्देश्यों को प्राप्त नहीं करेगा।" तारे ने गंगा पर रिपोर्ट्स देने वाले आईआईटीज के कंसोर्टियम का नेतृत्व किया था। इन रिपोर्ट्स को बनाने के लिए सरकार ने आईआईटी के कंसोर्टियम को 16 करोड़ रुपए दिए थे। गंगा महासभा के प्रमुख स्वामी जीतेंद्रानंद सरस्वती भी इस बात पर चिंता जाहिर करते हैं। वह एनएमसीजी के डायरेक्टर जनरल (डीजी) को लिख रहे हैं। वह कहते हैं, "जल संसाधन मंत्रालय ने कई मंत्रालयों के साथ समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर तो कर लिए लेकिन कोई नहीं जानता कि इसके बाद क्या हुआ। मैंने कई बार पूछताछ की कोशिश की, लेकिन कुछ भी नहीं निकला।"

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की अध्यक्षता वाली राष्ट्रीय गंगा परिषद (एनजीसी) का गठन अक्टूबर 2016 में हुआ। इसके बाद कभी इसकी बैठक नहीं हुई। एनजीसी गंगा नदी में प्रदूषण को रोकने, संरक्षित करने और नियंत्रित करने के लिए गठित किया गया था।

7 अक्टूबर, 2016 को जल संसाधन, नदी विकास और गंगा संरक्षण मंत्रालय द्वारा जारी राजपत्र अधिसूचना कहती है, "राष्ट्रीय गंगा परिषद हर साल कम से कम एक बार बैठक करेगी या जरूरत पड़ने पर उससे अधिक बार भी।" इसी अधिसूचना के अनुसार, राष्ट्रीय गंगा नदी बेसिन अथॉरिटी (एनजीआरबीए), जिसका नेतृत्व मौजूदा प्रधानमंत्री द्वारा किया जाता है, एनजीसी के अस्तित्व में आने के साथ भंग हो गई। इसलिए, एनजीसी को एनजीआरबीए की जिम्मेदारियों का निर्वहन करना है। पीएम मोदी की अध्यक्षता में एनजीआरबीए की एक बैठक 4 जुलाई 2016 को हुई थी। इसके बाद, एनजीसी का गठन हुआ था। मंत्रालय के एक वरिष्ठ अधिकारी ने पुष्टि की कि तब से एनजीसी की एक भी बैठक नहीं हुई है। प्रोफेसर तारे यह भी कहते हैं कि अगर प्रशासन में सुधार किया जाता है तो कार्यक्रम को विकेन्द्रीकृत किया जाना चाहिए। शीर्ष पर बैठी सरकार अत्यधिक केंद्रीकृत है और उसे अब सोचना है कि क्या करना है। वैसे लोगों को भारी संख्या में शामिल किया जाना चाहिए जो गंगा बेसिन क्षेत्र में रह रहे हैं।

क्या गंगा साफ हो जाएगी और क्या कोई समयसीमा संभव है? इस प्रश्न के जवाब में प्रोफेसर तारे का कहना है कि इसके लिए 2019 या 2020 की समयसीमा देना अवैज्ञानिक है। वह कहते हैं, "यह इतना आसान काम नहीं है कि कोई ऐसी छोटी समयसीमा दी जा सके। ऐसा करना राजनीतिक रूप से सही हो सकता है लेकिन वैज्ञानिक रूप से नहीं। वास्तव में, यह एक दीर्घकालीन प्रक्रिया है और मुझे नहीं लगता कि वर्तमान परिस्थितियों में कोई समयसीमा तय की जा सकती है।"

सीएजी ने नमामि गंगे पर दिसंबर 2017 की रिपोर्ट में कहा कि 2016-17 के दौरान विभिन्न परियोजनाओं में केवल 8 से 63 प्रतिशत धन का ही उपयोग किया जा सका

हे! गंगा

एनएमसीजी ने 97 ऐसे शहरों की पहचान की है, जो सीधे गंगा की मुख्य धारा के आसपास हैं और इन शहरों से 2953 एमएलडी सीवर निकलता है, जबकि यहां के सीवर ट्रीटमेंट प्लांट की क्षमता 1930 एमएलडी है

भितुश लूथरा , हर्ष यादवा , राजू साजवान

फोटोः विकास चौधरी

भारत की 43 फीसदी आबादी गंगा घाटी (बेसिन) में रहती है, इसलिए गंगा का कायाकल्प करना अनिवार्य है। हालांकि नदी दिन-ब-दिन प्रदूषित और सूखती जा रही है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की 2018 की रिपोर्ट के अनुसार, ऐसे 151 नाले जहां रोजाना लगभग 10 लाख लीटर पानी का प्रवाह रहता है और ये नाले गंगा में जाकर मिलते हैं, इनसे रोजाना लगभग 10,500 मिलियन लीटर प्रतिदिन (एमएलडी) प्रदूषित पानी गंगा में पहुंचता है। इस प्रदूषित पानी में बीओडी (जैव रासायनिक ऑक्सीजन) की मात्रा 350 से 430 टन प्रति दिन (टीपीडी) है, जो कि एक करोड़ से अधिक लोगों के शौच के नदी में पहुंचने के बराबर है। संयुक्त राष्ट्र के एक अनुमान के अनुसार, गंगा नदी की दो मुख्य सहायक नदियों में 80 फीसदी दूषित जल डाला जा रहा है।

1986 में पवित्र नदी को साफ करने का अभियान शुरू किया गया था, इसे गंगा एक्शन प्लान का पहला चरण कहा जाता है। इसके तहत सरकार ने कई प्रयास करे। इसके बाद यमुना एक्शन प्लान-एक, गंगा एक्शन प्लान-दो और गोमती एक्शन प्लान चलाया गया, लेकिन किसी से भी अच्छे परिणाम नहीं मिले। अब नमामि गंगे योजना की शुरुआत की है। यह योजना सरकार ने 2015 में शुरू की और इसके लिए 20 हजार करोड़ रुपए का प्रावधान किया गया। इसका लक्ष्य 2020 तक गंगा को अविरल और निर्मल बनाना है। यह लक्ष्य पहले 2019 तक के लिए रखा गया था।

गंगा में न्यूनतम प्रवाह न होने और प्रदूषण बढ़ने के कई कारण है, लेकिन सबसे बड़ा कारण शहरों से निकलने वाला म्युनिस्पिल वेस्ट (कचरे) को माना जाता है।

नमामि गंगे योजना का संचालन कर रही संस्था नेशनल मिशन फॉर क्लीन गंगा (एनएमसीजी) ने 97 प्रमुख शहरों की पहचान की है, जो गंगा की मुख्य धारा से जुड़े है और नमामि

फोटो: विकास चौधरी

1986 में प्रधानमंत्री राजीव गांधी की महत्वकांक्षी योजना पवित्र गंगा नदी को साफ करने का अभियान शुरू किया गया था, तब से अब तक कई प्रयास हो चुके हैं लेकिन अब तक गंगा अपने असली स्वरूप में नहीं आ सकी है

गंगे की लगभग सभी परियोजनाओं को इन शहरों के लिए मंजूर किया गया है। यद्यपि यह समझने के लिए किसी रॉकेट साइंस का इस्तेमाल करने की जरूरत नहीं है कि गंगा का पुनरुद्धार तब तक नहीं हो सकता, जब तक उसकी सहायक नदियों की ओर से बराबर ध्यान नहीं दया जाता। फिर भी, नमामि गंगे कम से कम एक व्यापक एकीकृत कार्यक्रम है, जो अपशिष्ट जल उपचार के लिए बुनियादी ढाँचा तैयार करने के अलावा ग्रामीण स्वच्छता, अविरल धारा, वनीकरण, जैव विविधता, संचार और सार्वजनिक आउटरीच आदि जैसे जुड़े हुए कार्यक्रम भी शामिल हैं।

एनएमसीजी के अनुसार अभी इन शहरों से गंदा पानी (सीवर) 2953 एमएलडी निकलता है, जो साल 2035 तक 3603 एमएलडी तक पहुंच जाएगा, जबकि इन शहरों में गंदे पानी के ट्रीटमेंट प्लांट्स की क्षमता अप्रैल 2019 तक 1930 एमएलडी ही है, जबकि 3308 एमएलडी क्षमता के ट्रीटमेंट प्लांट परियोजनाओं के प्रस्ताव को मंजूरी दी जा चुकी है। खास बात यह है कि 1930 एमएलडी क्षमता का मतलब यह नहीं है कि इतना सीवर ट्रीट हो रहा है, बल्कि लगभग सभी ट्रीटमेंट प्लांट क्षमता से कम काम कर रहे हैं।

दूषित जल उत्पादन की गणना पानी की आपूर्ति के आधार पर की जाती है (यह माना जाता है कि आपूर्ति की गई पानी का 80% दूषित जल में परिवर्तित हो जाता है)। बेसिन क्षेत्र में बने ज्यादातर घरों में पाइप से पानी की आपूर्ति नहीं होती है और उन्हें भूजल स्रोतों पर निर्भर रहना पड़ता है। ऐसे में, इन घरों से निकलने वाले दूषित पानी की गणना नहीं हो पाती और उनके लिए ट्रीटमेंट प्लांट भी नहीं बन पाते।

ट्रीटमेंट प्लांट को सही ढंग से चलाने के लिए एनएमसीजी ने हाइब्रिड एनुयिटी मॉडल शुरू किया। इसके तहत नगर पालिकाएं ट्रीटमेंट प्लांट के निर्माण और 15 साल के लिए संचालन की जिम्मेवारी निजी कंपनी को सौंप देती हैं। इसका मतलब यह भी है कि ऑपरेटर केवल तभी भुगतान करेगा जब एसटीपी कुशलतापूर्वक काम करता है और सभी डिस्चार्ज मानदंडों को पूरा करता है। उपचार संयंत्रों की निगरानी में सुधार के लिए उन्होंने एक शहर एक ऑपरेटर की अवधारणा पेश की है। हालांकि यह नई परियोजनाओं के लिए काम कर सकता है लेकिन मौजूदा परियोजनाओं में लागू करना मुश्किल होगा।

इस हाइब्रिड एनुयिटी मॉडल के तहत बनाए जाने वाले अधिकांश ट्रीटमेंट प्लांट्स को सीवरेज नेटवर्क के साथ नहीं जोड़ा जाता है। यानी कि, दूषित पानी शहर में खुले नालों में डाला जाएगा, लेकिन जब नदी में प्रवेश करेगा तो उसे वहीं रोक कर सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट में डाला जाएगा। स्वच्छ भारत मिशन के तहत सेप्टिक टैंक और पिट शौचालय तो बने हैं, लेकिन 70 फीसदी से अधिक इलाकों में सीवरेज नेटवर्क नहीं है। इसलिए कुछ समय के लिए मलमूत्र का इकट्ठा किया जाता है और बाद में खाली करने की जरूरत होती है। एक वैक्यूम टैंकर के माध्यम से इन शौचालयों और सेप्टिक टैंक से मल निकाला जाता है और खुले नालों, खेतों, खाली भूखंडों आदि में डाल दिया जाता है, लेकिन ऐसा करने से पर्यावरण को नुकसान पहुंच रहा है। किसी भी नदी या नाले में डाले जा रहे 5000 लीटर मल कीचड़ का एक ट्रक का भार एक दिन में शौच करने वाले 5000 लोगों के बराबर होता है। लगभग 4000 से ज्यादा ऐसे ट्रक या ट्रैक्टर रोजाना नदी की घाटियों में पहुंचते हैं, जो 2 करोड़ लोगों के खुले में शौच करने के बराबर होता है।

हालांकि इस बात के पर्याप्त संभावना है कि एसटीपी में थोड़ा सा बदलाव करने से इस मल कीचड़ का ट्रीटमेंट किया जा सकता है, लेकिन जो ट्रीटमेंट प्लांट डिजाइन किए गए हैं, उनमें ऐसी कोई संभावना नहीं दिखती। ऐसे में, सवाल उठता है कि अगर हम खुले नालों में शौच करते या मल कीचड़ डालते रहें तो हम निर्मल गंगा की उम्मीद कैसे कर सकते हैं?

घूंट भर पीने लायक नहीं

एनजीटी ने अपनी सख्त टिप्पणी में कहा था कि गंगा की स्वच्छता को धन उगाही या व्यावसायिक व औद्योगिक धंधे के भेंट नहीं चढ़ाया जा सकता है।

विवेक मिश्रा

फोटो: मीता अहलावत

देश में ज्यादातर लोग जब मौजूदा 17वीं लोकसभा के लिए चुनावी जीत-हार के सियासी गणित में उलझे हुए थे उसी वक्त देश की राष्ट्रीय नदी अपने जीवन अस्तित्व के बारे में सोच रही थी। दरअसल उसी वक्त पाया गया कि पीएम नरेंद्र मोदी के संसदीय क्षेत्र वाराणसी और कुंभ नगरी इलाहाबाद में भी गंगा का पानी पीने लायक नहीं है। हालत यह हो चुकी है कि समूचे उत्तर प्रदेश में कहीं भी गंगा का पानी सीधे नहीं पिया जा सकता। यह खुलासा हाल ही में सूचना के अधिकार से मिले जवाब में हुआ है। वहीं, केंद्र और राज्य सरकारों की ओर से गंगा की सफाई और प्रदूषण रोकने के लिए किए गए प्रयासों पर नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल (एनजीटी) ने असंतुष्टि और नाराजगी जाहिर करते हुए कहा है कि अब उनके पास कठोर उपायों के सिवा कोई रास्ता नहीं बचा है।

एनजीटी में जस्टिस आदर्श कुमार गोयल की अध्यक्षता वाली पीठ ने 14 मई 2019 को उत्तराखंड, बिहार, उत्तर प्रदेश, झारखंड व पश्चिम बंगाल को आदेश देने के साथ ही अपनी सख्त टिप्पणी में कहा है कि यह गौर करने लायक है कि 'गंगा देश की राष्ट्रीय नदी है और इसका समूचे देश के लिए एक विशेष महत्व है। यहां तक कि गंगा की एक बूंद भी गंभीरता का विषय है। गंगा में प्रदूषण रोकने के लिए सभी प्राधिकरणों का रवैया कठोर और जीरो टालरेंस वाला होना चाहिए। साथ ही प्रदूषण को रोकने के लिए बचाव के सिद्धांत का भी पूर्ण पालन होना चाहिए।'

पीठ ने कहा कि 'गंगा की स्वच्छता को धन उगाही और व्यावसायिक व औद्योगिक धंधे के भेंट

नहीं चढ़ाया जा सकता है। यहां तक कि कोई व्यक्ति भी यदि गंगा को प्रदूषित करता है तो उसे कानून के अधीन दंडित किया जाना चाहिए। यही मॉडल देश की समूची नदियों के लिए लागू होना चाहिए। यह बेहद दुखद है कि देश की नदियों के 351 हिस्से प्रदूषित हैं। एनजीटी ने कहा कि उनके जरिए गंगा सफाई को लेकर 10 दिसंबर, 2015 को दिए गए विस्तृत आदेशों का पालन गंभीरता से होना चाहिए।'

डूब क्षेत्र वन विभाग को सौंपना उचित होगा

एनजीटी ने उत्तराखंड, यूपी, बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल के मुख्य सचिवों को आदेश दिया है कि वह अपने-अपने राज्यों में गंगा की गुणवत्ता से संबंधित रिपोर्ट और आंकड़े अपने वेबसाइट पर हर महीने प्रकाशित करें। वहीं, सीपीसीबी इन आंकड़ों को गंगा की स्वच्छता प्रदर्शित करने वाले वेबसाइट पर दिखाए। इसके अलावा डूब क्षेत्र का सीमांकन भी किया जाए। अतिक्रमण हटाया जाए और प्रतिबंधित किया जाए। बायोडायवर्सिटी पार्क विकसित करने और वानिकी के लिए कदम बढाए जाएं। सीपीसीबी और केंद्रीय वन एवं पर्यावरण मंत्रालय इसके लिए गाइडलाइन जारी करें। इसके अलावा यह उचित होगा कि डूब क्षेत्रों को केंद्रीय वन एवं पर्यावरण मंत्रालय और संबंधित राज्य जांचकर वन विभाग को वानिकी और बायोडायवर्सिटी पार्क के लिए सौंपे।

एनजीटी ने उत्तराखंड, यूपी, बिहार, झारखंड और पश्चिम बंगाल के सचिवों को आदेश दिया है कि वे गंगा की गुणवत्ता रिपोर्ट प्रति माह अपने-अपने राज्यों की बेवब साइटों पर प्रकाशित करें

एनजीटी ने कहा है कि हम उम्मीद करते हैं कि देश के सभी संबंधित राज्य, राष्ट्रीय स्वच्छ गंगा मिशन और केंद्रीय जल संसाधन मंत्रालय गंगा सफाई के आदेशों पर अमल करेंगे और अपनी गंभीरता दिखाएंगे। सुप्रीम कोर्ट के आदेश पर एनजीटी ही गंगा के मामलों पर चरणबद्ध तरीके से सुनवाई कर रही है।

सूचना के अधिकार से मिली जानकारी

वहीं, हाल ही में याची व पर्यावरणविद विक्रांत तोंगड़ को सूचना के अधिकार के तहत मिली जानकारी में उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (यूपीपीसीबी) ने कहा है कि समूचे उत्तर प्रदेश में कहीं भी गंगा का पानी पीने लायक नहीं है।

यूपीपीसीबी की ओर से 10 मई 2019 को आरटीआई के जवाब में बताया गया कि यूपी में गंगा का कोई ऐसा स्ट्रेच नहीं है जहां नदी का पानी सीधे पिया जा सकता है। नेशनल वाटर क्वालिटी मानीटिरिंग प्रोग्राम के जरिए 31 स्थानों पर सैंपल लिए गए जबकि यूपीपीसबी ने 2 जगह के सैंपल एकत्र किए हैं। यह नमूने 2014 से 2018 के बीच बिजनौर, मुजफ्फरनगर, हापुड़, बुलंदशहर, बंदायूं, फर्रुखाबाद, कन्नौज, कानपुर, रायबरेली, प्रतापगढ़, कौशांबी, इलाहाबाद, मिर्जापुर, वाराणसी और गाजीपुर से लिए गए।

कुंभ का गंदाजल

संगम घाट से लिए गये नमूने में प्रति 100 मिलीलीटर में फीकल कोलीफॉर्म 12,500 मिलियन पाया गया। जबकि तय मात्रा 100 मिलीलीटर में सिर्फ 2500 मिलियन होना चाहिए, अन्यथा पानी नहाने लायक नहीं माना जाएगा।

बनजोत कौर, विवेक मिश्रा

वर्ष 2019 में 4 जनवरी से 14 मार्च तक कुंभ के दौरान 24 करोड़ लोगों ने प्रयागराज जाकर गंगा नदी में आस्था की डुबकी लगाई। इसे स्वच्छ कुंभ का नाम दिया गया। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने इसे आधुनिक भारत में अब तक का सबसे स्वच्छ कुंभ करार दिया था। केंद्र और यूपी ने श्रद्धालुओं के इस महाजुटान के लिए सरकार ने 4,200 करोड़ रुपये खर्च किए। लेकिन एनजीटी की गठित कमेटी की जांच रिपोर्ट और जमीन पर की गई पड़ताल के बाद गंदगी की जो तस्वीर सामने आ रही है वह स्वच्छता के दावे का हर भ्रम दूर कर देती है। 22 अप्रैल 2019 को नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल (एनजीटी) ने भी कुंभ के बाद की स्थिति पर कहा था कि प्रयागराज महामारी के मुहाने खड़ा है और इस समस्या का समाधान आपात स्तर पर होना चाहिए।

ठोस कचरे के निपटारे को लेकर सिर्फ बसवार प्लांट ही प्रदूषण के मानकों का उल्लंघन कर रहा है बल्कि प्रयागराज में ज्यादातर सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट (एसटीपी) से गंदा पानी भी गंगा में ही गिराया जा रहा था। एनजीटी की गठित समिति ने सलोरी, नैनी, कोडरा में मौजूद एसटीपी को भी संतोषजनक नहीं पाया था। रिपोर्ट में कहा गया था कि एसटीपी से ओवरफ्लो होने वाला गंदा पानी सीधे गंगा में गिराया जा रहा था। इससे यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि जिस पानी में कुंभ के दौरान श्रद्धालुओं ने पवित्र डुबकी लगाई वह पानी बेहद गंदा था। इतना ही नहीं हाल ही में यूपी प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने भी अपने जवाब में कहा है कि यूपी में कहीं भी गंगा का पानी सीधे पीने लायक नहीं है।

सीपीसीबी की गाइडलाइन के मुताबिक मानव

मल से पानी में पहुंचने वाले फीकल कोलीफॉर्म की मात्रा प्रति 100 मिलीलीटर में 2500 मिलियन होना चाहिए। यदि इससे अधिक है तो पानी नहाने लायक नहीं है। संगम घाट पर प्रति 100 मिलीलीटर में फीकल कोलीफॉर्म 12,500 मिलियन पाया गया। इसी तरह से आंकड़ा शास्त्री घाट पर भी मिला। ऐसी दुर्दशा पर एनजीटी ने भी हाल ही में फिर से राज्यों को कड़ी फटकार लगाई है और यूपी समेत अन्य गंगा

कुंभ मेले के दौरान दो हजार टन बिना छंटाई का ठोस कचरा निकाला गया। यह कचरा शहर के एक मात्र बसवार गांव स्थित ठोस कचरा प्लांट में डाल दिया गया, जबकि यह प्लांट सितंबर, 2018 से बंद पड़ा है

राज्यों से जवाब दाखिल करने को कहा है।

कुंभ मेले के दौरान दो हजार टन बिना छंटाई का ठोस कचरा निकला। यह सारा कचरा शहर के एकमात्र बसवार गांव स्थित ठोस कचरा प्लांट में डाल दिया गया था। यह भी जानना दिलचस्प है कि प्लांट तक कचरा पहुंचाने वाले यह जानते थे कि प्लांट सितंबर, 2018 से बंद है। पूरा कचरा बिना छंटाई के खुले में ही पड़ा है। एनजीटी का आदेश जिम्मेदारी लेने वाली प्राइवेट संस्था हरी-भरी के प्रतिनिधि अनिल कुमार श्रीवास्तव ने डाउन टू अर्थ के प्रतिनिधि को कचरा प्लांट में जाने से रोक दिया। बहरहाल प्लांट के पीछे बड़ी मात्रा में कचरा डाला गया था। यह पूरा कचरा बिना छंटाई और उपचार के एकत्र किया गया था। वहीं, कचरा सीधा यमुना नदी तक पहुंच रहा था। वहां मौजूद एक कर्मचारी ने यह स्वीकार किया कि प्लांट कई सेवानिवृत्त जज अरुण टंडन की रिपोर्ट पर आधारित था।

जब डाउन टू अर्थ ने इसकी पड़ताल करने के लिए प्रयागराज के संबंधित बसवार प्लांट पर पहुंचा तो कचरे के उपचार की कलई खुल गई। शहर से दस किलोमीटर दूर एक दीवार के सहारे खड़े कचरे का अंबार लगा हुआ था। नगर निगम के जरिए नियुक्त इस कचरे को प्रबंधित करने की महीनों से काम नहीं कर रहा है। यह सिर्फ तब चलता है जब अधिकारी जांच के लिए आते हैं।

नगर निगम के कमिश्नर उज्जवल कुमार इस बात को सिरे से खारिज करते हैं कि यह प्लांट कभी बंद भी हुआ। बहरहाल अधिकारियों के पत्र इस दावे की पोल खोल देते हैं। एनजीटी की गठित सुपरवाइजरी कमेटी की रिपोर्ट में उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के सदस्य सचिव के एक पत्र का जिक्र है जिसमें प्राइवेट फर्म हरी-भरी से यह पूछा गया है कि आखिर प्लांट ने काम करना क्यों बंद कर दिया? हरी-भरी की तरफ से जवाब में कहा गया है कि जब करार हुआ था तब सिर्फ 400 टन प्रति दिन उपचार की बात हुई थी लेकिन यहां प्रतिदिन 600 टन कचरा लाया जा रहा है। ऐसे में पूरे कचरे का उपचार करना बेहद कठिन है। जबकि एनजीटी ने कहा था कि एक बंद प्लांट पर कचरा गिराना आदेशों का जबरदस्त उल्लंघन है।

मेला शुरु होने से पहले प्लांट के पास 60 हजार टन कचरा उपचार करने के लिए था। कुंभ के जिलाधिकारी विजय किरण ने कहा कि कचरा निस्तारण न किए जाने के लिए काम काज में लगाई गई निजी संस्था हरी-भरी जिम्मेदार है। उसे इस काम के लिए पैसे दिए गए थे। उन्होंने खारिज किया कि प्लांट पर क्षमता से अधिक कचरा लाया जा रहा था।

इस आरोप-प्रत्यारोप के खेल के बीच बसवार प्लांट और ठकुरीपुरवा, मोहब्बतगंज, बोंगी और सिमता गांव में रहने वाली आबादी के लिए मुश्किलें बढ़ती जा रही हैं। भिनभिनाती मक्खी और मच्छर ने वहां की आबादी को परेशान कर रखा है। ठाकुरीपुरवा की 40 वर्षीय चांदकली ने शिकायत करते हुए कहा कि हम लोग घरों में खाना तक नहीं खा सकते हैं।

बसवार के निवासी विजय कुमार ने कहा कि उनके शरीर में कई जगह चकत्ते पड़े हैं औ्रर पेट में दर्द भी है। उन्होंने बताया कि गंदगी की वजह से कई तरह की बीमारियों को झेल रहे हैं। हमें मानसून के समय का डर है जब बरसात होगी और प्लांट से पूरा कचरा सीधे बहकर घर में घुसेगा। स्वास्थ्य की वजह से स्कूल और कॉलेज पहले से ही बंद हैं।

सिर्फ बसवार प्लांट ही नहीं प्रदूषण के मानकों का उल्लंघन कर रहा है बल्कि प्रयागराज में ज्यादातर सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट (एसटीपी) गंगा में ही गिराए जा रहे हैं। इसके चलते गंगा में नहाने लायक भी स्थिति नहीं है। एनजीटी की गठित समिति ने सलोरी और नैनी, कोडरा में मौजूद एसटीपी को भी संतोषजनक नहीं पाया गया था। एसटीपी से ओवरफ्लो होने वाला गंदा पानी सीधे गंगा में गिर रहा था। इससे यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि जिस पानी में कुंभ के दौरान श्रद्धालुओं ने पवित्र डुबकी लगाई वह पानी बेहद गंदा था।

केंद्र की उलटी धारा

एनजीटी में हाल ही में पोल खुलने के बावजूद जलमंत्री ने दावा किया कि उत्तराखंड और झारखंड में गंदे नाले का पानी गिरना पूरी तरह रोक दिया गया है

विवेक मिश्रा

फोटो: अविकल सोमवंशी

गंगा में नालों के जरिए कीचड़ और अपशिष्ट का गिरना बंद होगा कि नहीं यह स्पष्ट नहीं है लेकिन सरकार और मंत्रियों के दावे कभी नहीं बंद होंगे। जून, 2019 में केंद्रीय जल शक्ति मंत्री गजेंद्र सिंह शेखावत ने कहा कि 2022 तक गंगा में गंदे नालों का गिरना पूरी तरह बंद कर दिया जाएगा। यह दिसंबर तक धार्मिक अनुष्ठानों के अनुकूल हो जाएगी। इतना ही नहीं, उन्होंने यह दावा भी किया कि उत्तराखंड और झारखंड में गंगा में गंदे नालों का गिरना पूरी तरह रोक दिया गया है। इन दावों के उलट सच्चाई यह है कि 29 मई 2019 को ही नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल (एनजीटी) ने बिहार, झारखंड और पश्चिम बंगाल प्रत्येक राज्य को गंगा को क्षति पहुंचाने के लिए एक महीने के भीतर 25 लाख रुपये अंतरिम जुर्माना भरने का आदेश दिया है।

इसके अलावा हाल ही में प्रयागराज में गंगा में सीवर की निकासी और कूड़े-कचरे की तस्वीर भी सामने आई थी। संगम घाट की जांच में जो तथ्य मिले थे वह राज्य और केंद्र सरकार के सफाई के दावे के बिल्कुल उलट थे। सीपीसीबी की गाइडलाइन के मुताबिक मानव मल से पानी में पहुंचने वाले फीकल कोलीफॉर्म की मात्रा प्रति 100 मिलीलीटर में 2500 मिलियन होना चाहिए। यदि इससे अधिक है तो पानी नहाने लायक नहीं है। संगम घाट पर प्रति 100 मिलीलीटर में फीकल कोलीफॉर्म 12,500 मिलियन पाया गया था। इसी तरह से आंकड़ा शास्त्री घाट पर भी मिला था।

पर्यावरणविद लगातार गंगा की निर्बाध धारा और सफाई की मांग कर रहे हैं जबकि सरकार गंगा को धार्मिक अनुष्ठानों के नजरिए से देख रही है। नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल (एनजीटी) के दो वर्ष पूर्व फैसले पर नमामि गंगे, राष्ट्रीय स्वच्छ गंगा मिशन

और उत्तराखंड व उत्तर प्रदेश सरकार आदेशों का पालन नहीं कर पाई हैं। 22 अप्रैल 2019 को भी एनजीटी ने सभी को फटकार लगाते हुए जवाब दाखिल करने का आदेश दिया था।

एनजीटी ने 10 दिसंबर, 2015 और 13 जुलाई, 2017 को गंगा मामले पर विस्तृत फैसला सुनाया था लेकिन दुर्भाग्यपूर्ण है कि अभी तक इस दिशा में एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा जा सका है। 29 मई, 2019 के ही एनजीटी के आदेश में यह स्पष्ट तौर पर कहा गया है कि गंगा सफाई से जुड़ा एक भी प्रोजेक्ट अब तक पूरा नहीं किया जा सका है। इसके इतर केंद्रीय जल शक्ति मंत्री गजेंद्र सिंह शेखावत ने 28 जून 2019 को कहा कि सरकार इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए मिशन मोड पर काम कर रही है। वे राष्ट्रीय राजधानी में एक राष्ट्रीय सम्मेलन एवं प्रदर्शनी को संबोधित कर रहे थे।

जल संकट के मसले पर केंद्रीय मंत्री ने कहा कि देश साफ पीने के पानी की कमी और 25 लीटर पानी नहाने में व्यर्थ करने के चलन की दोहरी समस्या से एक साथ नहीं निपट सकता। इसके लिए प्रत्येक व्यक्ति और बड़ी कंपनियों को मिलकर प्रयास करने होगे। उन्होंने कहा कि औद्योगिक इकाइयों में पानी के इस्तेमाल तथा ऐसी इकाइयों से निकलने वाले प्रदूषित जल और अन्य रसायनों को नदियों में छोड़े जाने के मामलों पर प्रभावी नीति तय करने के बारे में वे उद्योगों के साथ बातचीत करने के लिए तैयार हैं। उन्होंने उद्योग संगठन एसोचैम से यह पता लगाने के लिए कहा कि सामाजिक उत्तरदायित्व के तहत बड़ी कंपनियां पानी से जुड़े मुद्दों पर कितना धन खर्च कर रही हैं। केंद्रीय मंत्री ने कहा कि उनकी जानकारी के मुताबिक राशि महज 3 प्रतिशत है।

यह बताने के बजाए कि भारत दुनिया में जल प्रदूषण के मामले में 122वें स्थान पर क्यों है? उन्होंने लोगों से ही यह पूछा है कि आखिर ऐसा क्यों है? केंद्रीय जलशक्ति मंत्री ने कहा कि भारत में दुनिया की कुल आबादी का 18 प्रतिशत तथा इतनी ही संख्या में पशुधन मौजूद होने के बावजूद वैश्विक अनुपात के हिसाब से पानी के मामले में हमारी हिस्सेदारी 4 प्रतिशत से भी कम है और उसका भी बड़ा हिस्सा प्रदूषित है। उन्होंने कहा कि हम सभी को यह आत्म निरीक्षण करना चाहिए कि आखिर जल प्रदूषण के मामले में भारत दुनिया में 122वें स्थान पर क्यों है?

जल शक्ति मंत्री ने 2024 तक हर घर में पाइप के जरिये पीने का साफ पानी पहुंचाने के काम को नदियों को साफ करने जैसा बेहद चुनौतीपूर्ण काम करार दिया है। साथ ही यह भी जोड़ा है कि इसे केवल सरकार की जिम्मेदारी के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए, बल्कि पूरे समाज को इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अपनी रोजमर्रा की आदतों का आकलन कर जिम्मेदार तरीके से काम करना चाहिए।

गंगातंत्र अब एक ऐसे जाल में फंसा है, जिसे बाहर निकालना बेहद मुश्किल है। पर्यावरणविद गंगा की निर्बाध धारा और सफाई की मांग कर रहे हैं जबकि सरकार गंगा को धार्मिक अनुष्ठानों के नजरिए से देख रही है

नदीहंता प्रयास

राष्ट्रीय अंतर्देशीय जलमार्ग परियोजना पहले से बदहाल नदियों पर एक और हमला है

श्रीपाद धर्माधिकारी

वाला "चैंपियंस ऑफ द अर्थ" पुरस्कार स्वीकार करते हुए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने कहा "हम वो लोग हैं, जिन्होंने प्रकृति को सजीव और सहजीव माना है।" लेकिन देश की जमीनी सच्चाई इससे काफी अलग है। आज पर्यावरण और प्रकृति को मात्र दोहन की वस्तु के रूप में देखा जा रहा है, जिसका मकसद केवल मानव जाति और उसमें भी जो ताकतवर और सम्पन्न वर्ग हैं, उनकी जरूरतें पूरी करना ही है। हमारी नदियां इसका एक अच्छा उदाहरण हैं। हम नदियों में तरह-तरह के हस्तक्षेप कर चुके हैं, जिनके चलते अधिकतर नदियां सूख गईं हैं या गंदे नाले में तब्दील हो चुकी हैं। नदियों के पाट हर तरह के अतिक्रमण के कारण सिकुड़ गए हैं और गैरकानूनी, अनियंत्रित रेत खनन के कारण उनकी जलवहन क्षमता को क्षति पहुंची है। इस सब के चलते नदियों की पारिस्थितिकी और नदियों पर निर्भर समुदायों की जीविका बुरी तरह से प्रभावित हुई है। नदियों की हालत देखकर पर्यावरण के प्रति जिस संवेदनशीलता का जिक्र मोदी ने किया, वह असल में विपरीत दिखाई देता है।

इस स्थिति को बदलकर बेहतर बनाने के बदले, सरकार नदियों में और बड़े हस्तक्षेप करने पर तुली हुई है, जिससे नदियों की यह स्थिति बद से बदतर होने की आशंका है। पिछले कई दशकों से बड़े बांध नदियों के दोहन और उन्हें खत्म करने के साधन बन रहे हैं। नदी जोड़ो परियोजना इसी कड़ी को आगे बढ़ाने वाली योजना है। अब एक नई परियोजना सामने आई है, जो हमारी नदियों पर बड़ा हमला साबित हो सकती है। यह है राष्ट्रीय अंतर्देशीय जलमार्ग परियोजना।

मार्च 2016 को भारतीय संसद में राष्ट्रीय जलमार्ग अधिनियम पारित किया गया। इसके चलते 111 नदियों या उनके कुछ हिस्सों को राष्ट्रीय (अंतर्देशीय) जलमार्ग घोषित किया गया है। इस कानून के पारित होने पर इन जलमार्गों पर यन्त्रनोदित जलयानों के द्वारा नौ-परिवहन और यातायात के विकास और नियंत्रण के सारे अधिकार केंद्र सरकार के अधीन हो गए हैं। इस योजना का मकसद है बड़े पैमाने पर नदियों में पोत परिवहन का विकास जिससे बड़े जहाजों पर माल की ढुलाई और यात्री परिवहन की आर्थिक संभावनाओं का लाभ उठाया जा सके। इन नदियों में सदियों से चल रही छोटी नौकाओं द्वारा, आमतौर पर पास के क्षेत्रों को जोड़ते हुए परिवहन का पूरा स्वरूप बदल जाएगा। इन अंतर्देशीय जलमार्गों का सबसे महत्वपूर्ण फायदा यह बताया जा रहा है कि रेल और सड़क यातायात के मुकाबले इस तरह के यातायात से ईंधन कम खर्च होगा और ये पर्यावरण को कम क्षति पहुंचाएंगे। सरकार इस दावे को एक अटल सत्य के रूप में पेश कर रही है। पर यह लाभ किसी भी लिहाज से सुनिश्चित और स्वतः स्फूर्त नहीं है। यह लाभ कुछ विशेष परिस्थितियों और कुछ निश्चित शर्तें पूरी होने की स्थिति में ही अर्जित होंगे। सारे जलमार्ग लाभदायी हों ऐसा जरूरी नहीं है। इन लाभों का स्तर अलग-अलग होगा और प्रस्तावित जलमार्गों में से कुछ आर्थिक रूप से भी अव्यावहारिक हो सकते हैं। यह बात भी महत्वपूर्ण है कि जलमार्गों के अनेक सामाजिक और पर्यावरणीय

तारिक अजीज / सीएसई

प्रभाव है जिनका आकलन नहीं किया जा रहा है।

नदियों को इस तरह के जलमार्गों में परिवर्तित करने के लिए कई हस्तक्षेप करने पड़ते हैं। जलमार्ग विकास के लिए नदियों में अपेक्षित गहराई और चौड़ाई वाला नौ-परिवहन मार्ग बनाने की जरूरत पड़ती है ताकि बजरों (माल ढोने वाली बड़ी नाव) पर माल की ढुलाई हो सके। मगर हमारे देश की अधिकतर नदियों में प्राकृतिक रूप से इतनी गहराई कई हिस्सों में नहीं है। अतः यह गहराई बनाई जाएगी। नदियों को गहरा करने के लिए या तो नदी तल की कटाई या खुदाई की जाती है, जिसे ड्रेजिंग कहा जाता है, या फिर जगह-जगह पर बैराज बनाए जाते हैं। इसके अलावा, बजरों और नौकाओं के सुरक्षित आवागमन के लिए नदियों को सीधा करना पड़ता है। तटों को सुरक्षित रखने के लिए काम करना पड़ता है और अन्य बाधाओं जैसे कम ऊंचाई वाले पुलों को हटाने की व्यवस्था करनी पड़ सकती है। जलमार्गों पर घाटों, नदी-बंदरगाहों, टर्मिनल, संपर्क सड़कों आदि सहायक बुनियादी ढांचे की भी जरूरत होगी। ये सारे पहलू नदियों में बड़े स्तर पर हस्तक्षेपों को दर्शाते हैं, जिसके प्रभाव भी व्यापक हो सकते हैं। नदियों की पूरी पारिस्थितिकी, जीव जंतु, वनस्पति, मछलियां सभी बड़ी मात्रा में प्रभावित होंगी। सबसे ज्यादा स्थानीय समुदाय जैसे मछुआरों की आजीविका प्रभावित होगी।

विडम्बना तो यह है कि इतने सारे प्रभाव होने के बावजूद जलमार्ग बनाने और चलने के लिए पर्यावरणीय मंजूरी की कोई आवश्यकता नहीं है। केंद्रीय पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय का राष्ट्रीय हरित अधिकरण में कहना है कि चूंकि जलमार्ग "पर्यावरण प्रभाव आकलन अधिसूचना 2006" की सूची में शामिल नहीं है, अतः कानूनी रूप से बंधनकारी पर्यावरणीय मंजूरी जरूरी नहीं है। हालांकि पर्यावरण मंत्रालय के इस बहाने में कोई तुक नहीं है क्योंकि पर्यावरण प्रभाव आकलन अधिसूचना 2006 की सूची में जलमार्गों के कुछ हिस्से जैसे ड्रेजिंग शामिल है, भले ही मंत्रालय उस पर अमल करने में झिझक रहा हो। दूसरा, यह सूची भी खुद पर्यावरण मंत्रालय ही बनाता है। तीसरा, मंत्रालय की खुद की विशेषज्ञ समिति ने यह सिफारिश की है कि जल मार्गों को उनके सभी हिस्सों के साथ इस सूची में शामिल करना जरूरी है। हालांकि कुछ जलमार्गों के लिए पर्यावरणीय मंजूरी के लिए आवेदन किया गया है और मंत्रालय ने इस प्रक्रिया को भी जारी रखा है, पर जिन जलमार्गों के लिए आवेदन नहीं किया है, उन पर काम शुरू है और ऐसे जलमार्गों पर निर्माण कार्य चलने पर मंत्रालय ने या सरकार ने कोई आपत्ति भी नहीं उठाई है। पर्यावरण मंत्रालय के ऐसे ढुलमुल रवैये के चलते कई सामाजिक और पर्यावरणीय प्रभाव के बावजूद जलमार्गों पर कार्य जोरों से चल रहा है।

हाल ही में भारतीय अंतर्देशीय जलमार्ग प्राधिकरण ने बताया कि कैसे कोयले की राख से लदे हुए जहाज ने बिहार से असम की यात्रा बांग्लादेश होते हुए सफलतापूर्वक पूरी की। यह भी खबर आई है कि इस जहाज ने बांग्लादेश में कई जगह मछुवारों के नदी में बिछाए जाल तोड़ दिए, और इसके कारण जहाज पर इन मछुआरों ने हमला भी किया। गंगा के निचले क्षेत्रों में डॉल्फिन पर अध्ययन कर रहे एक जाने माने विशेषज्ञ व शोधकर्ता नचिकेत केलकर ने कहा है कि भारत का राष्ट्रीय जलपशु गंगाई डॉल्फिन ड्रेजिंग और नौ-परिवहन के प्रभावों से खतरे में है। इसी तरह से कई और प्रभाव हैं जिनको अनदेखा करते हुए इन जलमार्गों को कार्यान्वित किया जा रहा है।

एक और गंभीर बात है कि जलमार्ग विकास से सबसे ज्यादा प्रभावित होने की सम्भावना स्थानीय जनता को है। इसके बावजूद जलमार्ग के विकास से संबंधित ज्यादातर कामों के आयोजन और क्रियान्वयन के लिए न तो इनकी सलाह ली गई है, और न ही इनके बारे में जनता को जानकारी दी गई है। कुल मिलाकर इन जलमार्गों के सामाजिक और पर्यावरणीय प्रभावों का ठीक से आकलन नहीं हुआ है, ऊपर से इन्हें पर्यावरणीय मंजूरी के दायरे से बाहर रखा गया है और सारी प्रक्रिया में लोगों की सहभागिता का भी पूरा अभाव है। ऐसे में जलमार्गों के रूप में इतना बड़ा हस्तक्षेप हमारी नदियों पर एक और बड़ा हमला है जो पहले से बुरी हालत में हैं।

(लेखक गैर लाभकारी संस्था मंथन से जुड़े हैं)

सी नदियों के पाट हर तरह के अतिक्रमण के कारण सिकुड़ गए हैं और गैरकानूनी, अनियंत्रित रेत खनन के कारण उनकी जलवहन क्षमता को क्षति पहुंची है

लहसड़ी बांध को बचाने के नाम पर तीन किलोमीटर और 30 मीटर चौड़ी राप्ती नदी की नई धारा के लिए किसानों की जमीन कब्जा कर जेसीबी से खुदाई जारी है

फोटोः अभिनव राज चतुर्वेदी

विनाश की नई धारा

गंगा बेसिन में नदियों की धारा मोड़कर विनाश की पटकथा लिखी जा रही है। पूर्वी उत्तर प्रदेश में गोरखपुर, अयोध्या, बाराबंकी और बस्ती से विवेक मिश्रा की पड़ताल

उत्तर प्रदेश में मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ के गृह जनपद गोरखपुर से करीब 18 किमी.दूर बेलीपार स्थित करजही गांव में 75 वर्षीय राम दरश अन्य ग्रामीणों के बीच चौपाल पर बैठे हैं। चौपाल से करीब डेढ़ किलोमीटर दूर राप्ती नदी की धारा बह रही है। इस नदी के पास गौरी बरसाइत तटबंध है। दशकों पुराने इस तटबंध को बचाने के लिए नदी की धारा को नए रास्ते से मोड़ने का प्रस्ताव है। राम दरश क्रुद्ध होकर कहते हैं कि नई धारा उनके खेत खलिहान से मोड़ी गई तो वह प्राण त्याग देंगे।

राम दरश बताते हैं कि पूरी बांसगांव तहसील बाढ़ से प्रभावित है। बीते वर्ष बाढ़ के दौरान नाव न मिलने पर हमारे गांव में ही 45 वर्ष के सउरू हरिजन की इलाज और दवा बिना मौत हो गई। यदि नदी की धारा मोड़ी गई तो गांव वालों पर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ेगा। गोरखपुर शहर से 19 किलोमीटर दूर सेवंई बाजार के रास्ते लहसड़ी रिंग बांध के पास राप्ती नदी के नए पथ का निर्माण जोर-शोर से जारी है। आसपास मौजूद लोग नई धारा के काम से भयभीत हैं। कई जगह अभी से नदी से छेड़छाड़ के शुरुआती दुष्परिणाम दिखने शुरू भी हो गए हैं।

गुप्त परियोजना

बाढ़ नियंत्रण के नाम पर शुरू की गई इस परियोजना का नाम है "ड्रेजिंग एंड रिवर चैनलाइजेशन" यानी नदियों की खुदाई कर उनकी नई धारा का निर्माण। इसकी देखरेख सिंचाई विभाग का यांत्रिक व बैराज खंड कर रहा है। शासन और विभाग का दावा है कि इस परियोजना से तटबंधों और बाढ़ प्रभावित आबादी को बचाया जाएगा। इस परियोजना की बुनियाद 2018 में बाराबंकी-गोंडा जिले के एल्गिन-चरसड़ी ब्रिज के पास घाघरा में ड्रेजिंग के पायलट प्रोजेक्ट के बाद रखी गई। परियोजना से पूर्व किसी तरह का पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन (ईआईए) नहीं किया गया। परियोजना को प्रक्रिया और मंजूरी से बचाने के लिए छोटे-छोटे हिस्सों में

बांटा गया है। इस वर्ष पूर्वी यूपी में बाढ़ प्रभावित बाराबंकी, गोंडा, बस्ती, गोरखपुर और देवरिया जिले में बाढ़ लाने वाली तीन प्रमुख नदियों की चिन्हित धारा को मोड़ा जा रहा है। इनमें पूर्वी यूपी की प्रमुख और नेपाल की सबसे बड़ी नदी घाघरा, राप्ती (गुर्रा) नदी शामिल हैं। घाघरा को कई जिलों में सरयू भी कहते हैं। इसके साथ ही अयोध्या में सरयू किनारे घाटों को न सिर्फ पक्का किया जा रहा है बल्कि मशीनों से बालू की खुदाई कर गुप्तार घाट के पास एक नई धारा का भी निर्माण किया गया है। गोरखपुर जिले में राप्ती नदी में तीन स्थानों पर कुल 9 करोड़ 97 लाख रुपए के बजट से धारा को मोड़ा जाना था। हालांकि करजही गांव के पास विरोध के बाद काम रुक गया है। लहसड़ी रिंग बांध के पास 3 किलोमीटर नए पथ और गोरखपुर शहर से करीब 12 किलोमीटर दूर झंगहा-रुद्रपुर मार्ग पर स्थित बरही पाथ बांध के गांव भगने के पास एक किलोमीटर नदी की नई धारा बनाई जा रही है। इन दोनों कामों की लागत करीब 7 करोड़ रुपए है, जबकि करजही में यह काम 3.55 करोड़ रुपए में होना है। वहीं बस्ती जिले में सरयू (घाघरा) की धारा को कटारिया चांदपुर के पास मोड़ दिया गया है। बाराबंकी में एल्गिन-चरसड़ी ब्रिज के पास घाघरा नदी में इस वर्ष दोबारा ड्रेजिंग की जा रही है। टुकड़ों में बंटी होने के कारण परियोजना की लागत का एकमुश्त हिसाब नहीं है।

गोरखपुर में करजही गांव के रमेश शुक्ला बताते हैं कि यदि राप्ती की धारा मोड़ी गई तो करजही और आसपास के गांवों के करीब एक हजार किसान और 150 दलित आवंटी की कृषि योग्य जमीन परियोजना की भेंट चढ़ जाएगी। करजही के पूर्व प्रधान ओपी शुक्ला का कहना है कि नदी की धारा मोड़ने का कोई औचित्य नहीं है। जिस गौरी बरसाइत और अन्य तटबंध को बचाने की बात कही जा रही है वह आजादी के समय से जस का तस खड़ा है। गांव के ही रवि शुक्ला कहते हैं कि "23 मार्च, 2019 को उनके खेतों में लाल झंडे गाड़े गए थे। इसके बाद 26 मार्च को नदी की खुदाई के लिए मशीनें आईं। इसका ग्रामीणों ने जमकर विरोध किया। अप्रैल में जलपुरुष राजेंद्र सिंह आए। उस दिन प्रशासन ने हमारे यहां काम रोक दिया लेकिन यह रोक कितनी स्थायी है, पता नहीं।"

लहसड़ी डैम के पास राप्ती नदी के तीन किलोमीटर नए रास्ते का काम करा रहे सिंचाई विभाग के यांत्रिक खंड के इंजीनियर ने नाम उजागर न करने की शर्त पर बताया, "यह स्थायी समाधान है। गांव वाले बाढ़ ही चाहते हैं ताकि उन्हें फायदा हो और राहत सामग्री मिलती रहे।" इंजीनियर के दावे से उलट धारा मोड़ने से सिर्फ नदी और उसके भीतर मौजूद प्राकृतिक संपदा को ही नुकसान नहीं होगा बल्कि ग्राम पंचायत कलानी बुजुर्ग के फरसही जोत, भिलोरैही, भाटजोत व अन्य गांवों में बसे करीब 200 परिवारों को खामियाजा उठाना होगा। इन गांवों में ज्यादातर निषाद समाज के लोग ही रहते हैं। इनकी आजीविका भी खतरे में पड़ जाएगी।

करजही गांव की तरह लहसड़ी रिंग बांध के पास भी इस नदी का नया मार्ग तैयार करने के लिए 23 मार्च को खेतों में लाल झंडे गाड़कर जमीन कब्जे में ली गई। ग्रामीणों के विरोध और चुनाव को देखते हुए काम रोक दिया गया लेकिन चुनाव खत्म होते ही 2 जून से पुलिस की मौजूदगी में काम शुरू कराया गया।

इस घटना को बाढ़ मुक्ति अभियान के संयोजक दिनेश मिश्रा कोसी नदी पर तटबंध निर्माण से जोड़ते हैं। उन्होंने बताया, "1957 में बिहार में चुनाव से पहले सिंचाई मंत्री केदार पांडेय ने कहा था कि जैसे ही चुनाव खत्म होंगे कोसी की धारा को सीधा करने या बांधने का काम शुरू कर दिया जाएगा।" वह बताते हैं कि इस परियोजना को तैयार करने वालों ने अमेरिका के मिसिसिपी नदी के अंजाम का अध्याय शायद नहीं पढ़ा है। अन्यथा नदी के साथ यह व्यवहार न होता।

इस पूरी परियोजना की देख-रेख कर रहे सिंचाई विभाग के वरिष्ठ अधिकारी सीएम का ड्रीम प्रोजेक्ट का हवाला देकर नाम न छापने की शर्त पर बताते हैं, "इस परियोजना में पर्यावरणीय नुकसान का कोई अध्ययन नहीं कराया गया है। नदी किनारे फर्जी पट्टे शासन से जारी करवाए गए थे।" पट्टे की जमीन पर आश्रित किसान इस कदम से बिल्कुल टूट गए हैं।

नदी से छेड़छाड़

पूर्वी उत्तर प्रदेश के गंगा बेसिन में घाघरा (सरयू) और राप्ती (गुर्रा) नदी के प्राकृतिक घुमाव को खत्म कर नई धारा बनाई जा रही है। इसके लिए पर्यावरण प्रभाव का आकलन भी नहीं किया गया

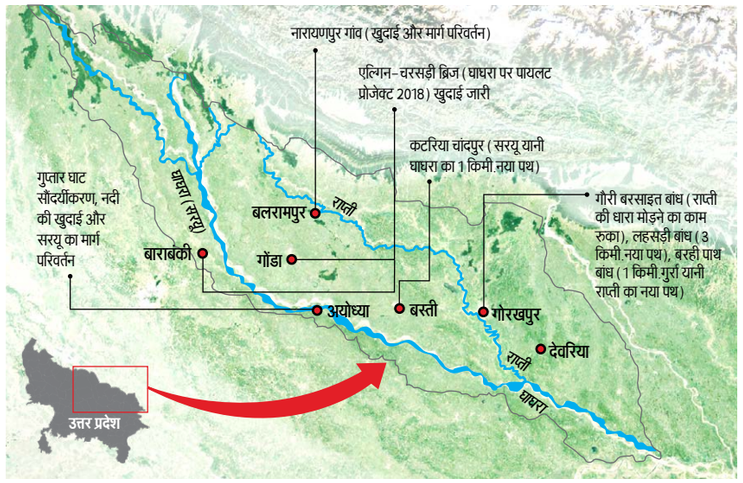

सरकार का तर्क	परियोजना पर सवाल
नदी की खुदाई और धारा मोड़ने से बाढ़ रुकेगी।	ऐसा हर वर्ष करना होगा। इससे नदी की पारिस्थितिकी बिगड़ेगी।
परियोजना में पर्यावरणीय अध्ययन की जरूरत नहीं।	गंगा की सहायक नदियों में छेड़छाड़ से पहले पर्यावरणीय अध्ययन जरूरी है।
पैसा व तटबंध बचेगा।	जिन तटबंधों को बचाने की बात हो रही है उनमें कई सही हैं। हर वर्ष पैसे की लूट बढ़ेगी।
स्थायी समाधान होगा।	नदी प्रभावित होने से भयंकर बाढ़ या फिर भयंकर सूखा का सामना करना पड़ सकता है।
एनजीटी के आदेश के आधार पर हो रहा है काम।	एनजीटी के ही पूर्व जज ने कहा कि उन्होंने फैसले में ऐसे काम के लिए नहीं कहा।

नदी के नए रास्ते से डेढ़ किलोमीटर दूर ही भिलोरैही गांव हैं। यहां रहने वाले सिकंदर निषाद ने बताया कि राप्ती की धारा के बाईं ओर मलौनी तटबंध को बचाने और लहसड़ी रिंग बांध पर पानी का दबाव करने के नाम पर राप्ती की जिस धारा को मोड़ा जा रहा है वह उनके घर से करीब दो से तीन किलोमीटर दूर है। धारा को बीच से काटकर सीधा कर दिया जाएगा जिससे नदी उनके घर के नजदीक आ जाएगी। इसकी विभीषिका समूचे गांव को झेलनी होगी। सिंकदर निषाद कहते हैं कि हमें मालूम है कि नदी के नए रास्ते के लिए उनका जो भी खेत कब्जा किया गया है, उसके बदले उन्हें कुछ नहीं मिलेगा। वह बताते हैं कि जब धारा नहीं मुड़ी थी तो भी हम हर वर्ष बाढ़ झेलते हैं लेकिन जब नदी की नई धारा बनेगी तो इर्द-गिर्द के सारे गांव बह जाएंगे।

गोरखपुर में ही गुर्रा नदी की धारा भी मोड़ी गई है। दलील है कि बरही पाथ बांध को बचाना है। नदी की धारा मोड़ने के दौरान ही जोगिया गांव के लोग बेमौसम बाढ़ से प्रभावित हो गए। ड्रेजिंग कर नदी की धारा बनाने के दौरान बाराबंकी में भी कई गांव प्रभावित हुए। शासन और प्रशासन ऐसे नुकसान को दबाने या टालने की कोशिश में जुटा है।

अब सवाल है कि नेपाल से आने वाली इन सर्पीली नदियों के प्राकृतिक घुमाव को किस आधार पर तोड़ा-मोड़ा जा रहा है। *डाउन टू अर्थ* ने अपनी पड़ताल में पाया कि नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल (एनजीटी) ने याची एमसी मेहता के गंगा सफाई मामले में 13 जुलाई, 2017 को 543 पृष्ठों का फैसला सुनाया था। इसमें तमाम शर्तों व पूर्व अध्ययन और प्रभाव आकलन के बाद ही ड्रेजिंग पर विचार करने को कहा गया था। सिंचाई विभाग के यांत्रिक खंड के अधिकारी इसी आधार पर यह काम कर रहे हैं। एमसी मेहता के गंगा फैसले से जुड़े एनजीटी के पूर्व जस्टिस ने बताया कि उन्होंने नदियों में खनन रोकने और मशीनों से ड्रेजिंग पर प्रतिबंध लगाने को कहा है, नदियों की धारा मोड़ने को नहीं। प्रीकॉशनरी ड्रेजिंग की बात की गई है जो नदियों के प्राकृतिक प्रवाह को बनाए रखने के लिए है।

बिना पर्यावरणीय अध्ययन पूर्वी यूपी में नदियों की नई धारा के निर्माण की इस ड्रीम परियोजना की शुरुआत बीते वर्ष (2018) में कर दी गई थी। इसकी निगरानी गुजरात में सूरत स्थित सरदार वल्लभभाई नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी (एसवीएनआईटी) के सिविल इंजीनियरिंग विभाग के विभागाध्यक्ष एसएम यादव ने की। उन्होंने कहा कि यह देश के इतिहास का एक लैंडमार्क काम साबित होगा। बाढ़ विशेषज्ञ एसएम यादव बताते हैं कि नेपाल के रास्ते राप्ती और घाघरा जब पहाड़ से उतरकर यूपी के मैदानी भागों में पहुंचती हैं तो इनकी रफ्तार बहुत कम हो जाती है क्योंकि यहां इन्हें बहने के लिए गहराई बेहतर नहीं मिलती। यूपी में इनका स्लोप बेहद कम (दो से तीन सेंटीमीटर) हो जाता है। इस प्रक्रिया में बहुत सारी गाद नदी पथ पर जमा हो जाती है। फिर नदी दूसरा रास्ता बनाती है। लिहाजा बाढ़ कभी दाहिने तो कभी बाएं पथ पर नुकसान करती है। इस परियोजना से बाढ़ नियंत्रण संभव है। हालांकि इसमें एक ही खामी है कि नदियों में खुदाई और चैनल का काम हर वर्ष करना होगा, तभी यह सफल होगा। वे पर्यावरण के नुकसान की बात को नकारते हैं लेकिन यह स्वीकार करते हैं कि पुराने तटबंध बेहद सावधानी और दूरदृष्टि से तैयार किए गए थे।

पूर्वी उत्तर प्रदेश में घाघरा और राप्ती नदी के बाढ़ को नियंत्रित करने के नाम पर प्राकृतिक प्रवाह को खत्म किया जा रहा है। इस परियोजना को पैसे की बर्बादी के साथ पर्यावरणीय त्रासदी की शुरुआत माना जा रहा

गंगा बेसिन में रिवर चैनलाइजेशन और घाटों के सौंदर्यीकरण जैसे कामों का प्रभाव घातक हो सकता है। इसे 2018 में "इंपैक्ट ऑफ रिवर चैनलाइजेशन एंड रिवरफ्रंट डेवलपमेंट ऑन सर्वाइवल हैबिटेट : एविडेंस फ्रॉम गोमती रिवर, ए ट्रिब्यूटरी ऑफ गंगेस इंडिया" शीर्षक के शोध में बताया गया है। इस शोध को लखनऊ स्थित बाबा साहेब भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ के पर्यावरण विभाग के वेंकटेश दत्ता और डीएसटी सेंटर फॉर पालिसी रिसर्च विभाग की उर्वशी शर्मा और डब्ल्यूडब्ल्यूएफ इंडिया की काशीफा इकबाल व आईसीएआर नेशनल ब्यूरो ऑफ फिश जेनेटिक रिसोर्स लखनऊ के अदीबा खान ने तैयार किया था। शोध पत्र का निचोड़ बताता है कि गंगा बेसिन में पहले से ही नदियों पर बहुत से दबाव हैं। ऐसे में नदी का रास्ता बदलने से न सिर्फ उसका जलीय जीवन प्रभावित होता है बल्कि नदी को भी नुकसान है। बिना पारिस्थितिकी सिद्धांतों और ईआईए के इस तरह के काम को नहीं किया जाना चाहिए।

गोरखपुर के करजही गांव में राप्ती किनारे मिले राम सिंह बताते हैं कि वह मछुआरे हैं और उनके परबाबा भी इसी नदी से जुड़े थे। वह कहते हैं कि इस नदी में प्रचुरता में विभिन्न प्रजातियों की मछलियां मिलती हैं। दुर्लभ घड़ियाल भी मौजूद हैं। इसके अलावा 50 से 60 की संख्या में सूंस (गंगा डॉल्फिन) भी मौजूद हैं। यदि नदी से छेड़छाड़ की गई तो जलीय जीवन प्रभावित होगा।

13 जुलाई, 2017 को एनजीटी ने गंगा के फैसले में केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (सीपीसीबी) के हवाले से कहा है कि गंगा नदी में 1970 में जहां 70 देशी प्रजातियों वाली मछलियां थीं, वहीं अब 53 तरीके की देशी प्रजाति वाली मछलियां लुप्त हो चुकी हैं। इस वक्त व्यावसायिक मकसद वाली प्रजातियां ही मौजूद हैं। इस परियोजना के बाद गंगा और उसकी सहायक नदियों के जीवन पर संकट और गहरा हो सकता है।

गंगा मामले के प्रमुख याची व पर्यावरण मामलों के कानूनी विशेषज्ञ एमसी मेहता ने कहा कि जब उत्तराखंड में टिहरी बांध का निर्माण किया गया तो उसे विकास का मंदिर कहा गया था। आज वह विनाश का मंदिर बन चुका है। नदियों से छेड़छाड़ उचित नहीं है। यमुना जिये अभियान के संयोजक मनोज मिश्रा कहते हैं कि एनजीटी के किसी विशिष्ट आदेश का गलत इस्तेमाल करके उसे पूरी तरह गंगा बेसिन में लागू कर देना ठीक नहीं है। गंगा बेसिन बेहद जटिल है। एनजीटी का आदेश यह नहीं कहता कि नदियों का रास्ता बदल दिया जाए या फिर उनमें मशीनों से ड्रेजिंग की जाए। जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के पूर्व डीन और पारिस्थितिकी विशेषज्ञ सीके वार्ष्णेय कहते हैं कि रिवर चैनलाइजेशन से किसी भी नदी के किनारे मौजूद नमभूमि (राइपेरियन वेटलैंड) प्रभावित हो सकती है। चैनलाइजेशन की प्रक्रिया में पानी बहुत तेज गति से गुजरता है। ऐसे में यह भी संभावना होती है कि खुदाई कर तैयार किया गया चैनल फिर से भर जाए।

यूपी के बाराबंकी जिले में नदी की धारा मोड़ने का पायलट प्रोजेक्ट में ऐसा ही हुआ। 2018 में एल्गिन-चरसड़ी ब्रिज के पास जहां चैनल बनाई गई थी, वह फिर पट गई। बाराबंकी में सिरौली-गौसपुर तहसील में घाघरा का बाढ़ प्रभावित सोनावां राजस्व ग्राम है। यहां के निवासी विनोद सिंह ने बताया कि बीते वर्ष नदी के बीचोंबीच खुदाई कर एक गहरा चैनल बनाय गया था। वह फिर से भर गया। इससे पानी फिर चारों तरफ फैल गया। इस वर्ष फिर उसी

गोरखपुर में करजही गांव के पास राप्ती की धारा मोड़ने के खिलाफ लोग गुस्से में हैं, लोकसभा चुनाव के दौरान यह बड़ा मुद्दा बना। इसके बाद शासन-प्रशासन ने परियोजना पर ब्रेक लगा दिया

स्थान के पास ड्रेजिंग की जा रही है। इस दौरान नजदीकी गांव टेपरा और आसपास के इलाके में पानी भर गया है। विनोद कहते हैं कि मनमौजी घाघरा को नियंत्रित करने का सपना ही गलत है। हर वर्ष नई धारा की खुदाई कहां-कहां की जाएगी?

बाराबंकी जिले से करीब 107 किलोमीटर दूर अयोध्या के गुप्तार घाट पर सरयू में मशीनों से ड्रेजिंग कर घाटों के सौंदर्यीकरण और उन्हें पक्का करने का काम तेजी से चल रहा है। यहां नदी की एक नई धारा का निर्माण कर घाट के करीब पानी लाया गया है। गुप्तार घाट पर बीते 15 वर्षों से नाव चलाने वाले और गोताखोर बाबू निषाद बहुत पढ़े-लिखे नहीं हैं लेकिन वे सहज तरीके से बताते हैं कि जब नदी एक तरफ रोकी जाएगी तो दूसरी तरफ वह कटान करेगी। नदी को बिल्कुल छेड़ा नहीं जाना चाहिए। जब नदी अयोध्या के गुप्तार घाट में मोड़ी गई तो इसका असर दूसरी ओर पांच किलोमीटर दूर गोंडा के नवाबगंज में जयपुर माझा गांव में दिखा। नदी ने डेढ़ किमी. कटान किया और बहुत से खेत जलमग्न हो गए।

अयोध्या में गुप्तार घाट से गोलाघाट तक नदियों से 18 लाख घन मीटर बालू (करीब एक करोड़ ट्रॉली) की खुदाई हुई है। यह इस वक्त की यूपी में बालू की बाजार कीमत (1,300 रुपए प्रति ट्रॉली) के हिसाब से करीब 1,170 लाख रुपए का बालू है। यह सिर्फ एक घाट पर नदी की खुदाई और नए मार्ग के निर्माण का हिसाब-किताब है। स्थानीय लोग बालू के अवैध इस्तेमाल का जिक्र भी करते हैं।

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण की सैंड एंड सस्टेनिबिलिटी : फाइंडिंग न्यू सॉल्यूशन फॉर एनवारमेंटल गवर्नेंस ऑफ ग्लोबल सैंड रिसोर्सेज शीर्षक वाली हालिया रिपोर्ट में कहा गया है कि बालू और बजरी की वैश्विक मांग 40 से 50 अरब टन प्रतिवर्ष है, जो 2030 तक बढ़कर 60 अरब टन प्रतिवर्ष हो जाएगी। रिपोर्ट में इस बात की चेतावनी दी गई है कि गलत तरीके से नदियों से हो रहे खनन के भयंकर दुष्परिणाम होंगे। यह प्रदूषण, बाढ़, जलीय जीवों की कमी और सूखे के हालात पैदा कर सकता है।

अयोध्या में ही गुप्तार घाट से गोलाघाट की तरफ बढ़ने के क्रम में रेत का समुंदर दिखाई देता है। यहां एक छप्पर की कुटिया में रहने वाले राम प्रसाद निषाद बताते हैं कि जहां भी रेत है, वहां पहले खेत थे। नदी की खुदाई से सारा रेत निकला है। छह महीनों में अब उनके सामने नदी की नई धारा चल निकली है जो अयोध्या तक जाएगी। वह बताते हैं कि जब नेपाल का पानी नदियों में आएगा तो यह नई धारा कौन सी डगर पकड़ेगी, यह कहना मुश्किल है। वह बताते हैं कि इस परियोजना के पीछे सरकार की क्या मंशा है, उन्हें नहीं पता। सरयू मैया तो प्रार्थना पर एक चूल्हा काट कर दूसरा चूल्हा बचा देती थीं। जाने अब क्या होगा?

राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद में पर्यावरण विभाग के सहायक प्रोफेसर विनोद कुमार चौधरी बताते हैं कि दुनिया में ऐसी मिसाल कहीं नहीं है जहां लोगों ने पारिस्थितिकी तंत्र बनाया हो, सिर्फ बिगाड़ा ही है। यह बहुत संभव है कि हमारे बच्चे किताबों में पढ़ें कि यहां कभी सरयू बहती थी। विश्वविद्यालय के ही एग्जीक्यूटिव काउंसलर ओम प्रकाश बताते हैं कि स्मार्ट अयोध्या बनाने की बात हो रही है लेकिन सरयू को संरक्षित करना इसमें शामिल नहीं है। सरयू से छेड़छाड़ और बंधा बनाने का काम सिर्फ जमीनों को हासिल करने की कवायद है।

अयोध्या में जमीनों की खुदाई कर जो भी मिट्टी या बालू निकला है उसका निस्तारण नहीं हुआ है। बाढ़ आने ही वाली है। संभव है कि कागजों में इस बालू को बाढ़ के साथ बहा हुआ दिखा दिया जाए।

40 साल : डूबता समाज

केंद्रीय जल आयोग ने कहा कि राष्ट्रीय बाढ़ आयोग की 1980 में दी गई पहली सिफारिश के बारे में कोई जानकारी नहीं थी इसलिए उस पर अमल नहीं हुआ।

विवेक मिश्रा

...आने वाले वर्षों में हम यह आशा नहीं कर सकते कि हम बाढ़ के खतरों से पूर्णतया सुरक्षित होकर भाग्यशाली स्थिति में आ जाएंगे। हमें एक सीमा तक बाढ़ों के साथ जीवन निर्वाह करना सीखना होगा"

यह व्यक्तव्य का वो हिस्सा है जिसे 27 जुलाई, 1956 को तत्कालीन केंद्रीय योजना और सिंचाई मंत्री गुलजारी लाल नंदा ने लोकसभा में पढ़ा था (स्रोत- बंदिनी महानंदा)। यह भी गौर करने लायक है कि 3 सितंबर, 1954 को आजाद देश की पहली राष्ट्रीय बाढ़ नीति के ऐलान के ठीक दो वर्ष बाद ही तत्कालीन केंद्रीय मंत्री ने यह बयान दिया था।

क्या बाढ़ के साथ अब भी जीवन निर्वाह हो रहा है? क्या 4 दशक पूर्व की नीतियां इस दिशा में कुछ कर पाईं? बीते वर्ष (19, मार्च 2018) को राज्यसभा में दिए गए एक लिखित जवाब में केंद्रीय जल आयोग (सीडब्ल्यूसी) के हवाले से कहा गया है कि 1953 से 2017 तक कुल 64 वर्षों में बारिश और बाढ़ के कारण 107,487 लोगों की मृत्यु हुई है। वहीं, विभिन्न मीडिया रिपोर्ट्स के मुताबिक 2019 में अब तक बाढ़ और अन्य प्राकृतिक आपदाओं के कारण मरने वालों की संख्या 50 पार कर गई है जबकि, बीते वर्ष 2018 में कुल 2,045 लोगों की मृत्यु हुई थी।

1954 की बाढ़ नीति तीन (तात्कालिक, अल्पावधिक और दीर्घकालिक) चरणों में बंटी थी। 14 से 15 वर्षों में बाढ़ पर काबू करने का दावा था। फिर 1976 में राष्ट्रीय बाढ़ आयोग (आरबीए) बना। वर्ष भर बीते होंगे और 1977-78 में भीषण बाढ़ ने देश को अपनी चपेट में ले लिया। यह बाढ़ कितनी भीषण थी?

इंटरनेशनल कांफ्रेंस ऑन फ्लड डिजास्टर्स (3-5 दिसंबर, 1981) में प्रोफेसर हुसैन मोहम्मद सलाहुद्दीन का शोधपत्र पढ़ा गया था। इसके मुताबिक गुजरात में कुछ ही वर्ष पूर्व मूर्वी बांध टूटने के कारण पूरा मूर्वी गांव बह गया और करीब 10,000 लोग मारे गए। 1977 में तमिलनाडु के तिरुचि में पांच लाख आबादी में करीब एक लाख आबादी महज चार घंटे के जलभराव में ही डूब गई। 19 नवंबर, 1977 को आंध्र प्रदेश के चिराला तट पर जलस्तर 5.5 मीटर बढ़ गया, 25 किलोमीटर दूर पूरी तालुका साफ हो गई। कुछ घंटों और एक दिन

में वहां 200 करोड़ रुपये का नुकसान हो गया। डिजास्टर मैनेजमेंट में सिस्टम एप्रोच की बात करने वाले इस शोध पत्र में कहा गया कि राहत कार्यों में सबसे बड़ी परेशानी समन्वय की है। यह समन्वय की परेशानी 2019 में भी बरकरार है। केंद्रीय जल आयोग जो बाढ़ के पूर्वानुमान और चेतावनियों को जारी करने की प्रमुख एजेंसी है वह हाल ही के वर्षों में आई बड़ी बाढ़ों (उत्तराखंड, श्रीनगर, चेन्नई, केरल, राजस्थान, महाराष्ट्र) के दौरान इस काम में पूरी तरह विफल रही है।

20 मार्च 1980 में राष्ट्रीय बाढ़ आयोग ने भी बाढ़ के साथ जीवन निर्वाह करने की बात को तरजीह देते हुए बाढ़ क्षति कम करने के लिए 207 सिफारिशें दीं थी। इन सिफारिशों को गाइडलाइन के तौर पर 1981 में देश के सभी राज्यों और संघ शासित प्रदेशों को भेज दिया गया था। लेकिन फिर क्या हुआ?

बाढ़ मुक्ति अभियान के संयोजक और लेखक दिनेश मिश्रा ने डाउन टू अर्थ को बताया कि 1995 में इन 207 सिफारिशों में करीब 95 को मंजूर किया गया और स्थिति यह हुई कि इनमें से एक भी सिफारिश को लागू नहीं किया गया। इसी मुद्दे पर कैग ने राष्ट्रीय बाढ़ आयोग (आरबीए) की सिफारिशों के अमल को लेकर 2017 में अपनी ऑडिट रिपोर्ट में कहा कि आयोग की ज्यादातर और अहम सिफारिशों पर करीब 40 वर्ष बीतने के बाद भी अमल नहीं किया गया।

राष्ट्रीय बाढ़ आयोग की सिफारिशों में कहा गया था कि आयोग के जरिए बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों की जो पहचान की गई है उसे सभी राज्य या संघ को दौरा करके वैज्ञानिक विधि से प्रमाणित करना चाहिए। आंकड़े के साथ बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों के नक्शे भी बनाने चाहिए। साथ ही किसी भी समय यदि कहीं बाढ़ की स्थिति है तो उसके आंकड़ों को भी दर्ज करें। राज्यों को बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों के यह जांचे हुए आंकड़े नक्शों के साथ केंद्रीय जल आयोग (सीडडब्ल्यूसी) या गंगा बाढ़ नियंत्रण आयोग (जीएफसीसी) के पास मार्च, 1982 से पहले भेजना था। साथ ही इसके सत्यापन की भी पुष्टि करनी थी। राष्ट्रीय बाढ़ आयोग की सिफारिशों में केंद्रीय जल आयोग या जीएफसीसी को भी नक्शे के मुताबिक औचक निरीक्षण की बात कही गई थी। इसके अलावा इन आंकड़ों को हर पांच वर्ष पर दुरुस्त करने व बाढ़ प्रभावित क्षेत्र को परिभाषित करने के लिए भी कहा गया था।

करीब 20 वर्षों बाद 2001 में केंद्रीय जल संसाधन मंत्रालय ने अपने जारी बयान में यह स्वीकार किया कि राष्ट्रीय बाढ़ आयोग की सिफारिशों पर अभी तक अमल नहीं किया जा सका है। राष्ट्रीय बाढ़ आयोग की सिफारिशों पर समीक्षा जारी है। आखिरकार 2003 में केंद्रीय जल संसाधन मंत्रालय की गठित एक्सपर्ट कमेटी (मार्च 2003) ने आरबीए की सिफारिशों की समीक्षा रिपोर्ट जारी की।

कैग ने 2017 की ऑडिट रिपोर्ट में राष्ट्रीय बाढ़ आयोग के सिफारिशों पर आधारित समीक्षा रिपोर्ट के हवाले से कहा कि कुल 17 राज्यों और संघ शासित प्रदेशों ने ही बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों के आंकड़े उपलब्ध कराए हैं। साथ ही सम और उत्तर प्रदेश को छोड़कर किसी ने आरबीए के जरिए बाढ़ प्रभावित क्षेत्र के अनुमानित आंकडों.को सत्यापित नहीं किया है। सिर्फ उत्तर प्रदेश और असम ने ही केंद्रीय जल आयोग और जीएफसीसी को आंकड़ों के साथ बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों के नक्शे उपलब्ध कराए हैं। ऐसे में 15 राज्यों ने इसे सत्यापित नहीं किया गया।

कैग ने ऑडिट रिपोर्ट में कहा कि केंद्रीय जल आयोग को बाढ़ प्रभावित क्षेत्र संबंधी आरबीए की इन सिफारिशों के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। इसलिए देश में बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों की पहचान का काम पूरा नहीं हुआ। न ही राज्यों ने नदी बेसिन के विस्तृत नक्शे के साथ बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों के आंकड़े उपलब्ध कराए हैं। और न ही सीडब्ल्यूसी या जीएफसीसी ने नक्शों के आधार पर बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों की पहचान के लिए कोई दौरा किया गया है। वहीं, इस मसले पर 2016 में केंद्रीय जल संसाधन मंत्रालय ने कहा कि राष्ट्रीय बाढ़ आयोग की जो भी जरूरी सिफारिशे थीं उस पर काम किया गया है। हालांकि, इस बिंदु पर काम नहीं किया गया है। जब बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों के बारे में जानकारी ही नहीं है तो नदियों के डूब क्षेत्रों का संरक्षण कैसे होगा?

उत्तर की गंगा से लेकर दक्षिण की गंगा (कावेरी) तक कहीं भी बाढ़ का डूब क्षेत्र सुरक्षित नहीं बचा है। न ही नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल (एनजीटी) के आदेश के बावजूद अतिक्रमण के खिलाफ कोई ठोस कदम उठाया गया है। कैग ने 2017 की अपनी ऑडिट रिपोर्ट में राष्ट्रीय बाढ़ आयोग की सिफारिशों के आधार पर जो दूसरी सबसे बड़ी कमी की ओर इशारा किया, वह था फ्लड प्लेन जोनिंग बिल को समयबद्ध तरीके से लागू करना। बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों के वैज्ञानिक और डिजिटल नक्शे तैयार करना आदि। फ्लड प्लेन जोनिंग बिल को लेकर जम्मू-कश्मीर, मणिपुर, राजस्थान और उत्तराखंड ने सिर्फ कदम बढ़ाया है लेकिन इसे लागू यह राज्य भी नहीं कर सके हैं। यही हाल रिवर बेसिन प्राधिकरणों का भी है। संसद के अगले शीतकालीन सत्र में 13 रिवर बेसिन प्राधिकरणों के बिल पर विचार होगा।

बाढ़ के साथ निर्वाह की स्थिति अब खत्म हो रही है। केंद्र और राज्य सरकारों ने बाढ़ की विभीषिका की दशकों अनदेखी की है। वहीं, सरकारें अनदेखी की कमी को छुपाकर बाढ़ क्षेत्रों में आबादी के दबाव और जलवायु परिवर्तन की समस्या, अनियमित और अतिशय बारिश के कारणों को प्रमुखता से गिना रही है। राष्ट्रीय बाढ़ आयोग ने 1980 में बताया था कि देश के कुल 21 जिलों में 4 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र बाढ़ प्रभावित है हालांकि अब सरकार की ओर से 11 जुलाई 2019 को लोकसभा में दिए गए जवाब के मुताबिक देश के 39 जिलों में करीब 5 करोड़ हेक्टेयर (49.85 एमएचए) भूमि बाढ़ प्रभावित है। सरकार के आंकड़ों से ही पता चलता है कि बचाव कार्यक्रमों और दशकों पुरानी नीतियों के बावजूद एक करोड़ अधिक हेक्टेयर भूमि बाढ़ प्रभावित हो चुकी है। यह तब है जब कई राज्यों ने अपने आंकड़ों को रिवर बेसिन नक्शे के साथ सत्यापित नहीं किया है।

गंगा के मैदानी भागों वाली बेसिन में बाढ़ नियंत्रण के लिए वर्किंग ग्रुप की एकीकृत कार्रवाई योजना बनाई गई थी। इस योजना की शुरुआत में एक विभागीय पत्र है। यह 15 दिसंबर, 1978 को कृषि मंत्रालय के एडिशनल सेक्रेट्री एसपी मुखर्जी ने अपने सेक्रेट्री जीवेके राव को लिखा था। इसमें कहा गया है कि देश ने 14 अगस्त, 1978 की भीषण बाढ़ को झेला है। ऐसे में बाढ़ नियंत्रण का यह कार्यक्रम डाउनस्ट्रीम में इंजीनियरिंग और मिट्टी के कटान को रोकने व संरक्षित करने वाला होगा। साथ ही अगले पांच से सात वर्षों में बाढ़ बचाव के काम इसी से किए जाएंगे। तब उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, हरियाणा, राजस्थान, पंजाब, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश में बाढ़ नियंत्रण कार्यक्रम के लिए कुल 1727.12 करोड़ रुपये की परियोजना केंद्र की ओर से बनी थी। राज्य भी बाढ़ नियंत्रण कार्यक्रम चलाते हैं। केंद्र जरूरी और आपात स्थितियों के लिए पैसा देती है क्योंकि बाढ़ राज्य का विषय हैं। बहरहाल 2019 में बाढ़ नियंत्रण के लिए केंद्र सरकार का बजट 13238.36 करोड़ रुपये पहुंच चुका है। 522 परियोजनाएं हैं। एक दर्जन से ज्यादा बाढ़ नियंत्रण और बचाव वाली समितियां और संस्थान आदि हैं।

राष्ट्रीय बाढ़ आयोग की सिफारिशों के मुताबिक लोगों की जनभागीदारी से भी बाढ़ बचाव कार्यक्रम को अंजाम देना था। मछुआरे हों या नदियों पर आश्रित रहने वाली आबादी आज वह लगातार डूब रही है। पानी पर लोक ज्ञान की बूटी देने वाले अनुपम मिश्र के शब्दों में कहें तो यह तैरने वाला समाज डूब रहा है।

बाढ़ अभिशप्त गंगा के मैदान

बाढ़ आपदा के शिकार सर्वाधिक मृतकों की संख्या गंगा के पहाड़ी और मैदानी राज्यों में है। यह बाढ़ के विकराल होते जाने की पक्की निशानी है या कुछ और?

विवेक मिश्रा

फोटो: विदेशा कुमार

देश की पहली बाढ़ नीति 3 सितंबर, 1954 को बनी थी। करीब 64 बरस गुजर रहे हैं। इस बीच राज ने नदियों से रिश्ता कभी बनाया नहीं और समाज का तालमेल ज्यादा दिन टिका नहीं। 1953 से लेकर 2017 तक 107,487 लोग इस बाढ़ में समा गए। जानकर हैरानी होगी कि बाढ़ मृतकों की करीब एक चौथाई संख्या बीते दस वर्षों की है। करीब 25 हजार लोग 2008 से 2019 तक बाढ़ और वर्षा के दौरान घटने वाली आपदाओं की वजह से मारे गए। इनमें 23,297 मृतक सिर्फ 15 राज्यों से हैं। बाढ़ आपदा के कारण सर्वाधिक मृतकों की संख्या गंगा के पहाड़ी और मैदानी राज्यों में है। बाढ़ के भुक्तभोगियों में शीर्ष पर उत्तराखंड है इसके बाद उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल और बिहार का नाम शामिल है। यह बाढ़ के विकराल होते जाने की पक्की निशानी है या कुछ और?

बाढ़ के भुक्तभोगियों में उत्तराखंड शीर्ष पर क्यों है? इस सवाल पर "गंगा आह्वान" से जुड़ी मलिका भनोट ने डाउन टू अर्थ को बताया कि बाढ़ की विभीषिका का एक बड़ा कारण गंगा में अवरोध है। नदी को रोका जाए तो वह विभीषक बन जाती है। इसके अलावा उत्तराखंड में विकास के कार्यक्रम भी बहुत हद तक बाढ़ की विभीषिका को बढ़ा रहे हैं। 2013 की त्रासदी के बावजूद कदम संभाल कर नहीं रखा जा रहा। चारधाम परियोजना के लिए सड़क चौड़ीकरण में हजारों की संख्या में पेड़ काटे गए। यह पेड़ ही मिट्टी को बांधे रखते हैं। नतीजा है कि आए दिन भूस्खलन होता है। मलबे की अनियंत्रित डंपिंग ने नदियों की व्यवस्था को बिगाड़ दिया है। इसी समय बादल फटने या कम समय में ज्यादा वर्षा का होना आग में घी का काम करता है। उत्तराखंड में इस हलचल का दुष्परिणाम गंगा के मैदानी भागों में भी पड़ता रहता है। अभी वक्त है। हिमालय में फूंक-फूंक

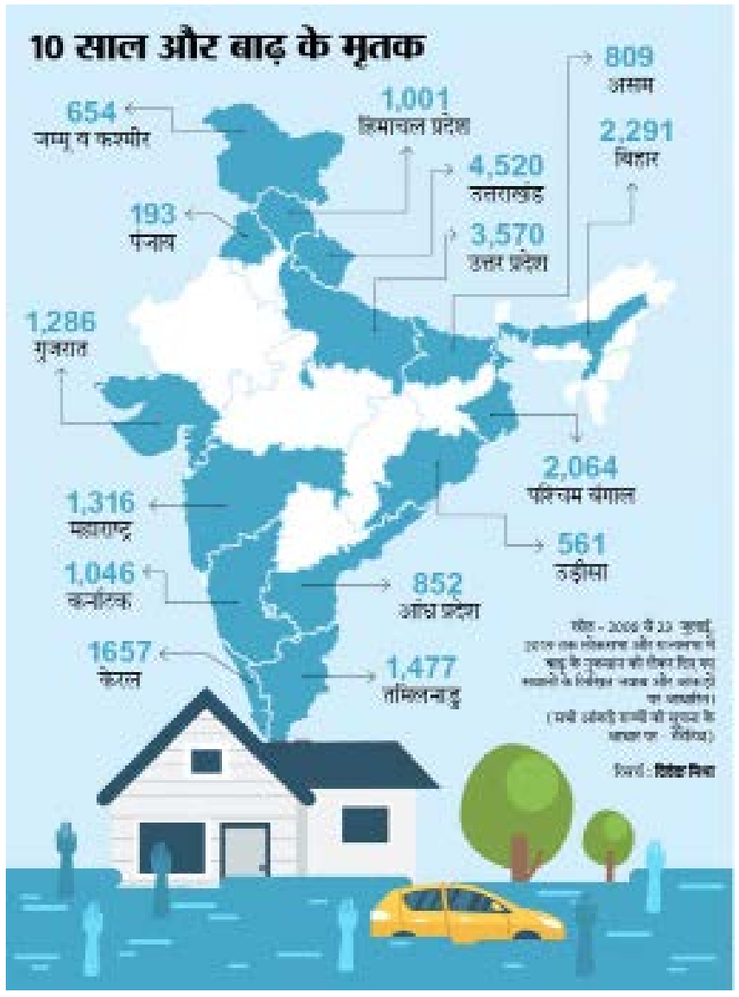

(आंकड़ों का स्रोत : 22 जुलाई, 2014 को लोकसभा में गृह मंत्रालय का जवाब, 18 दिसंबर, 2018 को लोकसभा में गृह मंत्रालय की ओर से अतरांकित प्रश्न का जवाब। 23 जुलाई, 2019 को गृह मंत्रालय का लिखित जवाब व केंद्रीय जल आयोग)

कर कदम रखा जाना चाहिए।

केंद्रीय जल आयोग की एक रिपोर्ट के मुताबिक 1953 से लेकर 2011 तक के बाढ़ के नुकसान का आकलन यह दर्शाता है कि जिंदगियों के नुकसान के आधार पर सर्वाधिक तबाही वाले वर्षों में 1977 सबसे ऊपर है। 1977 में 11,316 लोगों की मृत्यु बाढ़ की वजह से हुई थी। यह बाढ़ लगातार बड़ी संख्या में जान लेती रही। 1978 में 3,396 लोगों की मृत्यु हुई। 1979 में 3,637 लोगों की मृत्यु बाढ़ में हुई। इसके करीब एक दशक बाद 1988 में बाढ़ ने 4,252 जिंदगियां छीन लीं। फिर करीब दो दशक बाद 2007 में 3,389 लोगों की जिदंगी बाढ़ में नेस्तानाबूद हो गई। यह सर्वाधिक मौत वाले वर्षों के आंकड़ों की सूची यही खत्म नहीं होती। बेहद अल्पविराम के बाद 2013 में उत्तराखंड में भीषण बाढ़ आई। इस बाढ़ में सरकारी आंकड़े के मुताबिक 3,547 लोगों की मृत्यु हुई। यह बीते चार दशकों की सबसे भीषण बाढ़ में एक थी। मृत्यु के यह आंकड़े उन मासूम लोगों के हैं जो शासन की अनीतियों के शिकार हुए।

यह डिस्कलेमर देना जरूरी है कि मृतकों की गिनती और बाढ़ के नुकसान का कोई आकलन केंद्र सरकार नहीं करती है। केंद्र का कहना है कि बाढ़ राज्यों का विषय हैं। इसलिए बाढ़ के नुकसान के आकलन की जिम्मेदारी भी राज्यों की है। यह राज्य भी टेढ़ी खीर हैं। जब केंद्रीकरण होता है तब शोर मचता है कि राज्यों की हिस्सेदारी खत्म हो रही है, जब मानवता के काम उनके जिम्मे हैं तो वे गेंद केंद्र के पाले में डाल देती हैं। केंद्र और राज्यों के बीच गेंदों की फेंका-फेंकी का यह काम अनवरत चलता रहता है। गेंदों को एक-दूसरे के पाले में फेंकते रहना अदालतों में राज्य और केंद्र की नुमाइंदगी करने वाले प्रतिनिधि वकीलों की यह एक खास रणनीति भी रही है।

1980 में राष्ट्रीय बाढ़ आयोग (आरबीए) की सिफारिशों में नदी के डूब क्षेत्र के अतिक्रमण एक बड़ी चिंता का विषय था। यह चिंता कुछ पन्नों की सिफारिशों में बदल गई और फिर कभी चिंतन का विषय नहीं बनी। पर्यावरण और कानून के जानकार एमसी मेहता ने 1985 में गंगा और उससे जुड़े मामले पर पहली बार शीर्ष अदालत का दरवाजा खटखटाया था। डाउन टू अर्थ से बातचीत में एमसी मेहता बताते हैं कि 1985 और उसके बाद 1986-87 में गंगा बेसिन को लेकर बातचीत शुरु हुई थी, इसमें बाढ़ के डूब क्षेत्र और उसके अतिक्रमण को लेकर भी बहस-मुबाहिसे हुए। अदालतों से तो लड़ाई जीत ली है लेकिन जमीनी नतीजा आजतक हासिल नहीं हुआ। सरकारें बदलती रहीं और किसी ने अपनी जिम्मेदारी नहीं निभाई।

डूब क्षेत्र के अतिक्रमण के अलावा एक दूसरा और अहम पहलू बाढ़ को काबू में लाने का है। बाढ़ को काबू में लाने के लिए स्वच्छंद और उन्मुक्त नदियों को ही बांधने की हमेशा जुगत की गई। नदी से उसका घर-आंगन ही छीना गया। मानों सरकारें महाभारत की दुर्योधन हो गई हों और नदियों को उसके पांच ग्राम भी देने को तैयार न हों। इस बीच बहुत से कृष्ण नदियों का संदेशा लेकर सरकारों के पास पहुंचे भी लेकिन दुर्भाग्य यह कि सरकारें नदियों की स्वतंत्रता और उनकी अपनी जमीन देने के बजाए उलटे उन्हें जकड़ने की ही बात पर अमादा रहीं। क्या कृष्ण की भाँति विकराल रूप धरने वाली यह नदियां दुर्योधन रूपी सरकारों को ललकार नहीं रहीजंजीर बढ़ा कर साध मुझे, हां, हां दुर्योधन! बांध मुझे

तटबंधों और भारी-भरकम बांधों के बारे में बाढ़ मुक्ति अभियान के संयोजक और लेखक दिनेश मिश्र डाउन टू अर्थ से कहते हैं कि 1952 तक देश में कोई भी सरकारी तटबंध नहीं था। उसके बाद 1953 से तटबंध बनने लगे और यह तबसे बन और टूट रहे हैं। बांधों का भी यही हाल है। वे सुख देने के बजाए अनवरत दुख देते जा रहे हैं। कोसी नवनिर्माण मंच के संस्थापक महेंद्र यादव ने डाउन टू अर्थ से बताया कि नर्मदा से लेकर कोसी तक पुनर्वास को लेकर एक ही लड़ाई चल रही है। सरदार सरोवर डैम के फाटक बंद कर दिए गए हैं, इससे निमाड़ के डूब क्षेत्र में लोगों को जबरदस्त परेशानी का सामना करना पड़ रहा है। उसी डूब क्षेत्र में दो लोगों की करंट लगने से मौत भी हो गई। बाढ़ के पुनर्वास को लेकर यहां भी काम नहीं किया गया। यह जिम्मेदारी सरकार की है।

विकास के युग में बाढ़ ने भी विकास किया है। राष्ट्रीय बाढ़ आयोग ने 1980 में देश के 21 जिलों में थी अब यह बढ़कर 39 जिलों में पहुंच गई हैं। करीब चार दशक में एक करोड़ हेक्टेयर अधिक भूमि पर बाढ़ बढ़ गई है।(संबंधित खबर पढ़ने के लिए क्लिक करें)। जलवायु परिरवर्तन की अवधारणा भी तेज हो गई है। असमय और अत्यधिक वर्षा के आंकड़े अब पक्की तरह से यह बता चुके हैं कि नीतियों में हमें भी ध्यान में रखा जाए।

राज्यसभा में 29 अप्रैल, 2015 को दिए गए लिखित जवाब में कहा गया था कि संयुक्त राष्ट्र के यूएनआईएसडीआर के जरिए वैश्विक आकलन रिपोर्ट 2015 में जारी की गई थी। इसमें यह अंदाजा लगाया गया था कि भारत में प्राकृतिक आपदाओं के कारण सालाना औसत 9.8 बिलियन डॉलर (697,338,600,000.00 रुपये) का नुकसान होता है। वहीं, गृह मंत्रालय का कहना था कि देश में 58.6 फीसदी भूभाग भूकंप, 8.5 फीसदी चक्रवात, और 5 फीसदी बाढ़ प्रभावित है।

अंत में यह बताना जरूरी है कि ऐसा भी नहीं है कि सरकारों ने कुछ नहीं किया। सरकारें हर साल एक बड़ा बजट बाढ़ नियंत्रण के लिए बनाती और जारी करती हैं। 1978 में बाढ़ बचाव के नाम पर केंद्र ने 1727.12 करोड़ रुपये की परियोजना बनाई थी। 2019 में बाढ़ नियंत्रण के लिए केंद्र सरकार का यह बजट आकार लेकर 13238.36 करोड़ रुपये का हो चुका है। यह तय समय पर तैयार हो जाता है और सरकारी जेबों तक पहुंच भी जाता है लेकिन इस बजट का फायदा कभी समय से जनता तक नहीं पहुंचा, इस वक्त तो सरकारें यह कहकर बच भी सकती हैं कि बाढ़ें अब बताकर नहीं आती।

फोटोः सोमा बासु

अलकनंदा : जान हथेली पर

एनजीटी ने संयुक्त जांच रिपोर्ट में पावर हाउस के कैनाल में लीकेज की पुष्टि के बाद कॉरपोरेशन को जल्द से जल्द लीकेज दुरुस्त करने का आदेश दिया है।

विवेक मिश्रा

पनबिजली परियोजनाओं की सही से देखरेख न होने का एक और मामला सामने आया है। उत्तराखंड के टेहरी गढ़वाल जिले में श्रीनगर बांध में लीकेज का खतरा है। इसके चलते मगासू, सुरासू और नोप थापली गांवों की आबादी डर के साये में जी रही है। ग्रामीणों को भय है कि उनके गांवों में कहीं फिर से बांध का लीकेज न हो जाए और रातो - रात अलकनंदा का पानी उनकी फसलों और घरों को तबाह कर दे। यह सारे गांव कई बार अलकनंदा हाइड्रो इलेक्ट्रिक प्रोजेक्ट की कैनाल टूटने के चलते बर्बादी झेल चुके हैं।

अलकनंदा नदी किनारे स्थित मैसर्स अलकनंदा हाइड्रो पावर लिमिटेड के अंतर्गत बैराज और 82.5 मेगावाट की चार टरबाइन मौजूद हैं। बैराज और टरबाइन के बीच की दूरी करीब 4 किलोमीटर है। एक कैनल के जरिए बैराज से पावर हाउस तक पानी बिजली उत्पादन के लिए पहुंचाया जाता है। हाल ही में हुई संयुक्त अधिकारियों की एक टीम ने जांच के बाद इस नहर में लीकेज की पुष्टि की है।

इस जांच रिपोर्ट के बाद नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल (एनजीटी) में जस्टिस आदर्श कुमार गोयल की पीठ ने 6 सितंबर 2019 को नहर के लीकेज को तत्काल दुरुस्त करने का आदेश दिया है। इस लीकेज के खिलाफ स्थानीय याची उत्तम सिंह भंडारी व विमल भाई ने याचिका दाखिल की थी। पीठ ने लीकेज को दुरुस्त करने के लिए अलकनंदा हाइड्रो पावर कारपोरेशन लिमिटेड को समय रहते अग्रिम कदम उठाने का आदेश दिया है। इसकी निगरानी ऊर्जा विभाग टिहरी, डीएम व राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड को करना होगा।

वहीं, ग्रामीणों के माटू जन संगठन ने प्रशासन से पुनर्वासित किए जाने की मांग की है। इसके अलावा एनजीटी के इस आदेश की प्रति प्रशासन को भेजकर कहा है कि 30 दिसंबर, 2015 को देहरादून में स्थित वाडिया इंस्टीट्यूट ऑफ हिमालयन जियोलॉजी ने भी अपनी विस्तृत रिपोर्ट के दसवे बिंदु में पावर चैनल को दोबारा मजबूत और ठीक करने की सिफारिश की थी। इसे ध्यान में रखते हुए अग्रिम कार्रवाई की जाए।

एनजीटी में दाखिल याचिका में कहा गया था कि 2015 में श्रीनगर बांध के रिसाव के कारण ग्रामीणों को काफी नुकसान उठाना पड़ा था इसके बावजूद शासन-प्रशासन की ओर से कोई कार्रवाई नहीं की गई। लिहाजा 2018 में फिर से यह कैनाल टूट गया। बहरहाल इस मसले पर 11 जून को राज्य व स्थानीय अधिकारियों के 4 प्रतनिधियों वाली एक समिति का गठन किया गया था। इस समिति ने 18 जून को नहर का निरीक्षण किया था।

09 जुलाई को संयुक्त जांच रिपोर्ट पेश की गई थी। इसके मुताबिक मैसर्स अलकनंदा हाइड्रो पावर लिमिटेड अलकनंदा के अपस्ट्रीम श्रीनगर पर स्थित है। एक बैराज अलकनंदा नदी के पानी को डायवर्ट करके पावर हाउस तक पहुंचाता है। इस पावर हाउस के जरिए 330 मेगावाट बिजली का उत्पादन होता है। बैराज से पावर हाउस तक पानी पहुंचाने के लिए 1.1 किलोमीटर अंडरग्राउंड चैनल और 3.2 किलोमीटर ओपन चैनल बनाया गया है।

जांच के दौरान पाया गया कि अंडरग्राउंड चैनल में सुपाना गांव के पास पानी का लीकेज है, हालांकि वहां आबादी नहीं है। वहीं, सुपाना के ग्राम प्रधान लखपत सिंह ने बताया कि यहां पानी का लीकेज बहुत लंबे समय से है।

मगासू गांव ओपन वाटर चैनल के पास है। यदि वहां लीकेज हुआ तो गांव पर प्रतिकूल असर डाल सकता है। गांव वालों ने जांच टीम को बताया कि 2018 में यहां कैनाल टूट चुका है। हालांकि, रिपोर्ट में इस जगह पर लीकेज नहीं पाया गया। इसके अलावा नौर गांव में किलकिलीखर गांव के महंत श्री सुखदेव ने जांच टीम को बताया कि अंडरग्राउंड चैनल के लीकेज के चलते यह इलाका बुरी तरह प्रभावित है। गांव के लोग लंबे समय से पुर्नस्थापन की मांग कर रहे हैं। माटू जन संगठन ने कहा कि इससे पहले ग्रामीण भुक्तभोगी बनें सरकार को कैनाल के लीकेज मरम्मती और मजबूती का काम अग्रिम तौर पर करना चाहिए।

> पनबिजली परियोजनाओं की सही ढंग से देखरेख के अभाव में श्रीनगर बांध में लीकेज का खतरा मंडरा रहा है। इसके कारण आसपास के ग्रामीणों को डर है कि कहीं बांध का लीकेज उनके गांव को जलमग्न कर दे

प्रदूषण हुआ तो भरेंगे दस लाख

जुर्माने का कड़ा आदेश भी प्राधिकरणों को गंगा सफाई के लिए जगा न सका, अब भी एसीटीपी न लग पाने के बहाने राज्यों में जारी हैं

विवेक मिश्रा

गंगा से जुड़ा अदालती मामला नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल (एनजीटी) के हवाले है। ऐसा नहीं है कि अदालतों को गुस्सा दिखाना नहीं आता, यह बात अलग है कि जलशक्ति से जुड़े लोगों को यह गुस्सा झेल लेने की जबरदस्त शक्ति हासिल हो चुकी है। जुर्माने के डर की बानगी देखिए कि अगस्त, 2019 में अपने आदेश के अनुपालन की एक सुनवाई में हाथ में कुछ ठोस न पाकर एनजीटी ने उत्तराखंड और उत्तर प्रदेश समेत राष्ट्रीय स्वच्छ गंगा मिशन (एनएमसीजी) को आदेश दिया कि वह घरेलू और औद्योगिक प्रदूषण पर लगाम लगाएं या फिर केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (सीपीसीबी) को प्रत्येक महीने 10 लाख रुपये तक का पर्यावरणीय जुर्माना भरें।

एनजीटी ने एक तरफ उत्तर प्रदेश के कानपुर में गंगा किनारे मौजूद टैनरीज के क्रोमियम अपशिष्ट को उपचार सुविधा केंद्र (टीएसडीएफ) पर तीन महीनें में शिफ्ट करने का आदेश दिया है तो दूसरी तरफ उत्तराखंड को गंगा में बिना शोधित सीवेज की निकासी पर पूरी तरह रोक लगाने का आदेश दिया है।

जस्टिस आदर्श कुमार गोयल की अध्यक्षता वाली पीठ ने गौर किया कि 1985 से गंगा का मामला सुप्रीम कोर्ट में चल रहा था। फिर यह मामला 2014 से 2017 तक एनजीटी में चला। इतने वर्षों के बावजूद अभी तक सीवेज और औद्योगिक प्रदूषण पर लगाम नहीं लगाया जा सका है। पीठ ने खासतौर से उत्तराखंड और उत्तर प्रदेश में दो वर्ष पूर्व दिए गए आदेशों का अमल अब तक नहीं किए जाने पर नाराजगी भी जाहिर की। वहीं, दोनों राज्यों को कड़ा आदेश भी दिया है।

पीठ ने उत्तर प्रदेश को अपने आदेश में कहा है कि वह 1976 से डंप किए जा रहे क्रोमियम को तीन महीने में टीएसडीएफ पर शिफ्ट करें यदि ऐसा करने में सरकार विफल रहती है तो उसे एक करोड़ रुपये काम की गारंटी (परफॉर्मेंस गारंटी) सीपीसीबी के पास जमा करने के साथ ही प्रतिमाह के हिसाब से 10 लाख रुपये का पर्यावरणीय जुर्माना भी भरना होगा।

पीठ ने उत्तर प्रदेश के मुख्य सचिव को आदेश देते हुए कहा है कि यह जरूरी है कि बिना शोधित सीवेज की निकासी गंगा में न होने पाए इसलिए अंतरिम उपाय के तहत 1 नवंबर, 2019 के बाद से बिना शोधित सीवेज की निकासी नहीं होनी चाहिए। चाहे सीवेज का बायोरीमेडेशन / फाइटोमेडिएशन हो या किसी अन्य उपाय के जरिए उसे शोधित किया जाए लेकिन गंगा में जाने वाले सीवेज का शोधन जरूरी होगा। यदि राज्य इस काम में विफल होता है तो उसे पांच लाख रुपये प्रतिमाह का जुर्माना प्रति ड्रेन यानी नाले के हिसाब से सीपीसीबी को जमा करना होगा। जितने नालों से सीवेज की निकासी गंगा और उसकी सहायक नदियों में होगी उस नाले की गिनती के हिसाब से पांच लाख रुपये प्रतिमाह राज्य को पर्यावरणीय जुर्माना
अदा करना होगा।

पीठ ने कहा कि बाद में एसटीपी लगाने में देरी या अन्य किसी भी तरह का बहाना माना नहीं जाएगा। पीठ ने कहा कि जो भी अधिकारी एसटीपी आदि कामों लिए लगाए जाएंगे यदि काम पूरा नहीं होता है तो उनसे और ठेकेदार से 10 लाख रुपये प्रति माह की दर से पर्यावरणीय जुर्माना वसूला जाएगा।

इसके अलावा उत्तराखंड में भी गंगा में सीधे बिना शोधित सीवेज की निकासी रोकने के लिए पीठ ने कहा है कि एक जुलाई 2020 के बाद भी यदि किसी ड्रेन से गंगा या उसकी सहायक नदी में बिना शोधन सीवेज की निकासी होती है तो राज्य को प्रति माह 10 लाख रुपये का पर्यावरणीय जुर्माना देना होगा। साथ ही ऐसे क्षेत्र जहां एसटीपी या सीवेज नेटवर्क नहीं शुरु किया गया है वहां 31 दिसंबर, 2019 के बाद से दस लाख रुपये पर्यावरणीय जुर्माना वसूला जाएगा। इसमें एनएमसीजी 50 फीसदी की साझेदार होगी। यहां भी एक नवंबर से पहले बिना सीवेज शोधन की निकासी पर रोक लगानी होगी।

गंगा राज्यों के जरिए आदेशों का अनुपालन न होने पर नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल भी लाचार दिखाई देता है , तमाम फटकारों के बाद उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड जैसे राज्यों में गंगा सफाई की हालत खराब है

पीठ ने उत्तराखंड के मामले में कहा कि न सिर्फ पर्यटन नीति विकसित होनी चाहिए बल्कि होटलों को अनुमति और वाहनों को नियंत्रित करने के लिए भी नीति बननी चाहिए ताकि गंगा में प्रदूषण को कम किया जा सके। खासतौर से गंगा किनारे ट्रैफिक गतिविधि को नियंत्रित करने और वाहनों के प्रदूषण को कम करने के लिए भी कदम उठाए जाने चाहिए। सिर्फ बिना प्रदूषण वाले वाहनों को ही इजाजत दिया जाना चाहिए।

सीवर प्रदूषण के कारण गंगा में खुद से हानिकारक तत्वों को समाप्त करने की शक्ति क्षीण हो रही है। ऐसे में केंद्रीय वन एवं पर्यावरण मंत्रालय को चार महीने के भीतर ऐसी गाइडलाइन जारी करनी चाहिए जिससे नदियों के डूब क्षेत्र में वन विभाग बायोडायवर्सिटी पार्क बना सके। साथ ही गाइडलाइन में सीवेज निकासी आदि के लिए जुर्माना वसूलने का भी प्रावधान होना चाहिए। बार-बार दोहराए जाने वाले इन आदेशों पर अनुपालन नहीं हो पाया है, कई कारणों और बहानों के आगे जुर्माने को भी झुकना पड़ा है। और मामला अभी न्यायालय में लंबित है।

नदियों को बीमार बनाते एसटीपी

अव्वल एसटीपी कठिन उपचार मानकों पर काम नहीं कर रहे हैं और दूसरा इन्हें बेहतर हाल-फिलहाल भविष्य में बेहतर बनाना एक बड़ी चुनौती है

विवेक मिश्रा

नदी में प्रदूषण रोकने के लिए सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट (एसटीपी) कितने कारगर हैं, यह बहस जारी है। लेकिन केंद्र सरकार की ओर से ऐसे भी प्रयास होते रहते हैं कि इन एसटीपी की शोधन कार्यक्षमताओं को कम किया जाए। केंद्रीय वन एवं पर्यावरण मंत्रालय की ओर से तीस साल से भी अधिक पुराने एसटीपी नियमों के मानकों को कमजोर करने वाली एक अधिसूचना 2017 में जारी की गई थी। नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल (एनजीटी) में जब यह मामला पहुंचा तो एनजीटी ने इस अधिसूचना को रद्द करने का आदेश दिया और एक जैसे कठिन उपचार (ट्रीटमेंट) मानकों वाले एसटीपी के नियम लागू करने का आदेश सुनाया। हालांकि, आदेश का पालन अभी तक नहीं हो सका है।

एनजीटी के अध्यक्ष और जस्टिस आदर्श कुमार गोयल की अध्यक्षता वाली पीठ ने गठित विशेषज्ञ समिति की रिपोर्ट के बाद याची नितिन शंकर देशपांडे के मामले में 30 अप्रैल 2019 को विस्तृत आदेश दिया है। इस विशेषज्ञ समिति में आईआईटी कानपुर, आईआटी रुड़की, नीरी और सीपीसीबी के सदस्य व वैज्ञानिक शामिल थे।

याची नितिन शंकर देशपांडे ने अपनी याचिका में पर्यावरण मंत्रालय की अधिसूचना पर सवाल उठाया था। अधिसूचना में कहा गया था कि गंगा-यमुना समेत देश की तमाम नदियों और जलाशयों में सीवेज और औद्योगिक प्रवाह रोकने के लिए एसटीपी को समाधान माना गया है। हालांकि, केंद्रीय वन एवं पर्यावरण मंत्रालय की ओर से 13 अक्तूबर 2017 को जारी की गई एक बेहद खराब अधिसूचना के कारण एसटीपी समाधान के बजाए समस्या बन चुके हैं। वहीं, बेहद कमजोर मानकों पर ही नए एसटीपी के टेंडर निकाले जा रहे हैं।

याची नितिन शंकर देशपांडे ने अधिसूचना के प्रारूप और बाद में पर्यावरण मंत्रालय की ओर से

फोटोः विकास चौधरी

इस सारिणी में देखिए 1986 के मानक से भी कमजोर मानक 2017 में एसटीपी के लिए पर्यावरण मंत्रालय ने तैयार किए -

मानक	1986 की अधिसूचना	13 अक्तूबर 2017 को जारी एसटीपी के नए मानकों की अधिसूचना
जैव रासायनिक ऑक्सीजन मांग (बीओडी)	30 मिली ग्राम प्रति लीटर (एमजी प्रति लीटर) से कम	30 और 20 से कम -मेट्रो शहर (एमजी प्रति लीटर)
रसायनिक ऑक्सीजन मांग (सीओडी)	250 एमजी प्रति लीटर से कम	कोई सीमा नहीं
फीकल कोलीफॉर्म	कोई सीमा नहीं	1000 ◦एमपीएन से कम
कुल नाइट्रोजन	100 एमजी प्रति लीटर से कम	कोई सीमा नहीं
कुल ठोस निलंबित कण (टीएसएस)	20 एमजी प्रति लीटर से कम	100 और 50 एमजी प्रति लीटर से कम (मेट्रो शहर)
कुल फास्फोरस	कोई सीमा नहीं	कोई सीमा नहीं
अमोनिकल नाइट्रोजन	50 एमजी प्रति लीटर से कम	कोई सीमा नहीं

◦सारिणी में सिर्फ फीकल कोलीफोर्म की मात्रा एमपीएन से प्रदर्शित है। इसका आशय है कि कितना बैक्टीरिया पानी में है। एमपीएन यानी मोस्ट प्रोबेबल नंबर पर 100 मिलीलीटर।

एसटीपी के मानकों को लेकर अधिसूचना के हवाले से कहा था कि नदियों और जलाशयों को बीमार और प्रदूषित बनाने वाले प्रदूषक तत्वों को 1986 में तय की गई मात्रा के मुकाबले सख्त बनाए जाने के बजाए कमजोर बना दिया गया है। कुछ प्रदूषक तत्वों की न्यूनतम या अधिकतम मात्रा को ही खत्म कर दिया गया है। इसके चलते न तो एसटीपी कारगर रह गए और न ही नदियों में प्रदूषण करने वालों के लिए कोई सीमा रेखा रह गई।

एनजीटी की गठित विशेषज्ञ समिति ने 2017 की कमजोर अधिसूचना पर गौर व विश्लेषण करने के बाद 30 अप्रैल को एसटीपी के मौजूदा मानकों और उनमें उपलब्ध कमियों को लेकर अपनी रिपोर्ट एनजीटी में दाखिल की थी। इस रिपोर्ट में एसटीपी के कमजोर मानकों के अलवा कई चिंताजनक तथ्य सामने आए हैं। एनजीटी की पीठ ने सीपीसीबी और विशेषज्ञ रिपोर्ट के हवाले से कहा है कि इस वक्त देश में कुल 323 नदियों में 351 नदी के हिस्से प्रदूषित हैं। इसलिए बीओडी, सीओडी और टीएसएस, नाइट्रोजन, अमोनिया जैसे अन्य प्रदूषक मानकों को सख्त बनाया जाना चाहिए ताकि एसटीपी की निकासी से नदियां प्रदूषित न हों।

एनजीटी की गठित विशेषज्ञ समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि यदि शोधन के दौरान सीओडी की मात्रा का कोई मानक नहीं तय होगा तो इससे नदी या जलाशय बेहद प्रदूषित हो जाएंगे। वहीं, ऑनलाइन निगरानी में सीओडी की मात्रा को आसानी से रिकॉर्ड किया जा सकता है जबकि बीओडी सेंसर्स के साथ ऐसा नहीं है। भविष्य में ऑनलाइन निगरानी को ध्यान में रखते हुए भी सीओडी का मानक तय होना चाहिए। नदी या जलाशय के पानी में सूक्ष्म जीवों की उपस्थिति और गुणवत्ता के लिए भी टीएसएस को नियंत्रित किया जाना चाहिए। इसके अलावा नाइट्रोजन और फास्फोरस की उपस्थिति नदी और जलाशय में मौजूद एल्गी, वेजिटेशन और मछलियों के लिए काफी नुकसानदायक है।

वहीं, एनजीटी ने कहा कि मेट्रो और बड़े शहरों में पानी के फिल्टर की मशीनें तो उपलब्ध हैं लेकिन गांव और कस्बों में यह मशीने नहीं हैं। ऐसे में मेगा और मेट्रोपोलिटन शहरों में बीओडी, सीओडी, फीकल कोलीफॉर्म, नाइट्रोजन-फास्फोरस आदि के जो भी सख्त शोधन मानक तय हों वह सभी जगह के लिए होने चाहिए। गांव और कस्बों में शोधन के मानकों को कमजोर करना किसी भी तरह से उचित नहीं है। देश की बड़ी आबादी इन जगहों पर रहती है। विशेषज्ञ समिति की सिफारिशों में गांव-कस्बों के नए मानकों को कमजोर करने के बजाए एक जैसे मानक पर जोर दिया जाना चाहिए। यह बात भी उचित नहीं है कि सात वर्षों तक मौजूदा एसटीपी में मानकों को बदला नहीं जा सकता है।

मॉनसून में ठप एसटीपी

गंगा नदी घाटी में बने शहरों में सीवर ट्रीटमेंट प्लांट न होना तो एक समस्या है ही, साथ ही बाढ़ की स्थिति में हालात और बिगड़ जाते हैं

शान्तनु कुमार पाधी , राहुल मानकोटिया , राजू साजवान

फोटो: विक्रम चौधरी

"**यूपी–त्रिवेणीसंगम** के पास निचले इलाकों में गंगा, यमुना नदी का जल स्तर बढ़ने के कारण बाढ़ आ गई

उत्तर प्रदेश में, गंगा का बहाव खतरे के निशान के करीब है, आसपास के घरों में पानी घुसा

बिहार में फिर से आई बाढ़, भारी बारिश से नदियों ने तोड़ा किनारा"

ये कुछ सुर्खियां हैं जो गंगा के बेसिन (घाटी) में हर मानसून के दौरान समाचार पत्रों में सामान्य रूप से पढ़ी जाती हैं।

जब भी प्रकृति और बाढ़ की बात आती है, तो हाल के इतिहास ने हमें सिखाया है कि पानी कितनी जल्दी अपने किनारों को बहा सकता है। कभी सोचा है कि ऐसी विपरीत परिस्थितियों में पानी की उपयोगिताओं का क्या होता है।

हाल ही में आई बाढ़ की घटनाओं के दौरान एक प्रमुख चिंता आकस्मिक बाढ़ की रही। ऐसी बाढ़ की वजह से पीने के पानी और वेस्ट ट्रीटमेंट प्लांट (अपशिष्ट जल उपचार संयंत्र) पर सीधा असर पड़ता है, इसलिए इसे एक बड़ी समस्या मानते हुए सबसे पहले इस ओर ध्यान दिया जाना चाहिए। यह भी सच है कि इस तरह की बाढ़ गंगा बेसिन के लिए आम खतरा बन गई है।

बाढ़ का असर समुदाय पर पड़ सकता है। उफनती नदियों के बांध टूटने से आने वाली बाढ़ से स्थानीय लोग और उनका कारोबार बुरी तरह प्रभावित होता है। बिजली संकट, संपत्ति का नुकसान के साथ वेस्ट वाटर और पीने के पानी की सुविधाओं पर इस बाढ़ का बुरा प्रभाव पड़ता है। भारी बाढ़ कई तरह से ट्रीटमेंट प्लांट्स को नुकसान पहुंचाती है।

एक ट्रीटमेंट प्लांट को उस समय ज्यादा खतरा होता है, जब वे किसी निचले इलाके में होता है और आसपास कोई जलाशय (वाटर बॉडी) होती है। गुरूत्वाकर्षण के कारण बाढ़ का पानी यहां भारी वेग से आता है। वेस्ट ट्रीटमेंट प्लांट में लगे पंप स्टेशन भी ढंग से काम नहीं कर पाते, इससे बाढ़ और बढ़ जाती है।

हालांकि, ट्रीटमेंट प्लंट के लिए जगह का चयन करते हुए जीआईएस मैपिंग की जाती है, लेकिन बाढ़ संभावित इलाके या निचले इलाकों की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। ऐसी जगहों को इसलिए भी सही माना जाता है, क्योंकि निचले इलाके में होने के कारण गुरुत्वाकर्षण की वजह से पानी का फ्लो भी इन ट्रीटमेंट प्लांट की तरफ रहता है। इससे ट्रीटमेंट प्लांट बनाना सस्ता भी पड़ता है। कई शहरों में ये निचले इलाके वाले क्षेत्र अतिक्रमण से मुक्त होते हैं या यहां कोई विवाद नहीं होता, इसलिए भी स्थानीय निकायों के लिए यहां ट्रीटमेंट प्लांट आसान रहता है।

एक ट्रीटमेंट प्लांट बनाने के लिए काफी पैसा खर्च करना पड़ता है। हालांकि, एक ट्रीटमेंट प्लांट बनाते वक्त यह ध्यान रखा जाता है कि बाढ़ के हालात में क्या किया जाएगा, बावजूद इसके मॉनसून के दौरान ये ट्रीटमेंट प्लांट बंद रहते हैं और नगर निकायों को यह छूट दे दी जाती है कि वे शहर से निकलना वाला मल कीचड़ नदी में प्रवाहित कर सकें। यह मान लिया जाता है कि नदी का तेज बहाव यह मल कीचड़ भी बहा ले जाएगा। इसलिए मॉनसून के दौरान गंगा में बड़ी तादात में मल कीचड़ सीधे प्रवाहित किया जाता है।

सेंटर फॉर साइं स एंड एनवॉयरमेंट (सीएसई) की टीम ने शहर में स्वच्छता की स्थिति का अध्ययन करने के लिए इस साल अगस्त और सितंबर के महीने में प्रयागराज का दौरा किया। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि शहर में सीवरेज नेटवर्क को एक मिशन मोड पर रखा गया है, टीम का मुख्य फोकस शहर के बाहरी क्षेत्रों का अध्ययन करना था।

अध्ययन के दौरान सीएसई की टीम ने पाया कि सलोरी में लगा 14 एमएलडी क्षमता का सीवर ट्रीटमेंट (एसटीपी) और नैनी में लगे एसटीपी को छोड़कर अन्य सभी एसटीपी बंद थे। जबकि उससे पहले के हफ्तों में प्रयागराज में कोई बड़ी बारिश नहीं हुई थी। एसटीपी के बंद होने का कारण गंगा के जल स्तर में वृद्धि होना बताया गया, क्योंकि इससे बैक फ्लो होने का खतरा होता है। इससे यह साफ है कि सीवर डिस्चार्ज के लिए करीबी निचला इलाका तो बेहतर है, इसके फायदे भी हैं, लेकिन नुकसान भी हैं।

जब हमारी टीम ने एफएसटीपी की साइट पहचान के लिए चुनार का दौरा किया था, तो हमने पाया था कि एसटीपी के लिए प्रस्तावित साइट बाढ़ की आशंका वाले क्षेत्र में थी।

समस्या इसलिए भी जटिल हो जाती है कि गंगा बेसिन में बने एसटीपी में सीवरेज नेटवर्क से आने वाले सीवर को ही ट्रीट नहीं किया जाता है, बल्कि खुले नाले में आने वाले कीचड़ को भी ट्रीट किया जाता है, यह उन इलाकों से आता है, जहां सीवरेज नेटवर्क नहीं है। इन नालों को रोकने या डायवर्ट करने की व्यवस्था होना चाही। ऐसे में यह बेहतर रहता है कि एसटीपी फाइनल डिस्पोजल प्वाइंट के पास बनाया जाए।

खुली नालियों में बारिश का पानी होने के कारण जब कीचड़ एसटीपी तक पहुंचता है तो वे ओवरफ्लो हो जाते हैं, क्योंकि उनकी क्षमता उतनी नहीं होती। भारी बारिश के दौरान समस्या और बढ़ जाती है। ऐसे में, स्थानीय निकाय द्वारा यह पानी सीधे में डाल दिया जाता है।

गंगा में एसटीपी बनाने की दिशा में काम कर रहे इंजीनियरों ने इस समस्या का समाधान खोजने में कड़ी मेहनत की है। ऐसा ही एक उदाहरण इलाहाबाद के राजापुर में 60 एमएलडी एसटीपी का है। यहां बाढ़ को रोकने के लिए एसटीपी के चारों ओर लगभग 10 मीटर ऊंचे तटबंधों का निर्माण किया गया है। जब सीएसई टीम ने इस साल सितंबर में एसटीपी का दौरा किया तो बाढ़ के कारण यह भी बंद था।

गंगा बेसिन में एसटीपी की स्थिति वास्तव में एक चिंता का विषय है, क्योंकि कई एसटीपी का काम सही नहीं है। नेशनल मिशन फॉर क्लीन के तहत गंगा वन सिटी - वन ऑपरेटर मॉडल की शुरुआत की है, जिसमें एक एकल निजी एजेंसी को मौजूदा सीवरेज के ढांचे में सुधार करने और नया सीवरेज इंफ्रास्ट्रक्चर तैयार का काम सौंपा जा रहा है। प्रयागराज में इस संकट को हल करने की जिम्मेवारी अदानी वाटर्स को दी गई है, जबकि वा-टेक वबाग को आगरा और गाजियाबाद को ठेका दिया गया है। यह काम हाइब्रिड एनुयिटी मॉडल के तहत दिया गया है, जिसमें निजी एजेंसी को कुल राशि का एक हिस्सा देना होता है और उसके बदले अनुबंध की अवधि तक पैसा वसूलती है। हालांकि इसमें जटिल सीवरेज प्रणाली की निगरानी और बेहतर काम करने पर प्रोत्साहन की व्यवस्था की गई है, लेकिन देखना यह है कि बाढ़ की समस्या से इंजीनियर कैसे निपटते हैं।

फोटो: विकास चौधरी

बिहार की गंगा : ढो रही 74 फीसदी सीवेज

गंगा के सामने खड़ी चुनौतियों के उपाय को लेकर अनगिनत सरकारी बैठके हुई हैं, लेकिन इन बैठकों का कोई स्पष्ट नतीजा निकला कर कभी आया हो ऐसा कम ही दिखाई देता है। हाल ही में गंगा में प्रदूषण की चिंता को लेकर राष्ट्रीय स्वच्छ गंगा मिशन की बैठक हुई है, चिंतन की यह परंपरा चिंता जनक है

विवेक मिश्रा

बिहार गंगा घाटी का एक प्रमुख सूबा है। राज्य ने हाल ही में अपना 37वां मुख्यमंत्री चुना है और इसकी साक्षी 74 फीसदी सीवेज प्रदूषण झेलने वाली गंगा नदी बनी है। सीवेज प्रदूषण की मार झेल रही गंगा में कुल 25 सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट (एसटीपी) लगाए जाने हैं, लेकिन अब तक सिर्फ 2 एसटीपी का ही काम पूरा हो पाया है। वरिष्ठ अधिकारी और अदालत की फाइलों में एसटीपी का यह चक्र अनवरत घूम रहा है।

राष्ट्रीय स्वच्छ गंगा मिशन (एनएमसीजी), जो कि एक रजिस्टर्ड सोसाइटी है और जिसे गंगा राज्यों में नदी की साफ-सफाई, साज-सज्जा से जुड़े कामों पर सरकारी एजेंसियों को अमल कराने का जिम्मा सौंपा गया है, उसकी ओर से 30 सितंबर, 2020 को एक बैठक संपन्न हुई है। इस बैठक में गंगा में प्रदूषण की रोकथाम के लिए अन्य राज्यों के साथ बिहार के कामों का भी जायजा लिया गया। बैठक में सबसे पहले यह साफ किया गया कि इसका मकसद नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल (एनजीटी) के आदेशों का पालन करने के लिए है।

बैठक में सभी राज्यों की ओर से अपनी स्थिति स्पष्ट की गई। बिहार का भी नंबर आया, कहा गया कि राज्य में मॉडल कोड ऑफ कंडक्ट यानी आचार संहिता लागू है तो अभी हाथ बंधे रहेंगे। नवंबर के बाद गंगा सफाई का काम बहुत तेज कर दिया जायेगा।

इस भविष्य के दावे के अलावा बैठक में गंगा सफाई को लेकर अतीत के कामों और वर्तमान स्थिति की भी बात हुई। डाउन टू अर्थ को मिली बैठक की रिपोर्ट के मुताबिक, एनएमसीजी के वरिष्ठ पर्यावरण विशेषज्ञ ने बताया कि राज्य कुल 65.15 करोड़ लीटर सीवेज प्रतिदिन (651.5 एमएलडी) निकासी करता है जिसमें से महज 9 करोड़ लीटर (90 एमएलडी) पुराने और 8 करोड़ लीटर (80एमएलडी) सीवेज का उपचार नए सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट के जरिए होता है। यानी करीब 74 फीसदी सीवेज बिना उपचार के ही गंगा और सहायक नदियों में चला जाता है।

देश की नदियों को मल-प्रदूषण से रोकने के लिए सरकारें फिलहाल एसटीपी को ही कारगर तरीका मानती हैं। इनकी परियोजनाएं, डीपीआर, जगह का अधिग्रहण आदि का काम वर्षों से चल रहा है। सितंबर महीने में ही केंद्र की ओर से कुछ और नए एसटीपी लगाने की घोषणा की गई है। बहरहाल कुल 25 एसटीपी राज्य में प्रस्तावित हैं। इनमें से 2 ही पूरे हैं। बाकी सभी एसटीपी कहीं-न-कहीं किसी प्रक्रिया वाली फाइल और संचालित होने के लिए अटके हैं। आचार संहिता लागू है तो अभी काम नहीं होगा और इस दौरान गंगा में सीवेज का प्रवाह बना रहेगा।

ठोस कचरे का भी अंबार अब शहर और गांवों से निकलने लगा है। लिहाजा यह मैदान और फिर नालियों, तालाबों, जलाशयों और किसी न किसी रास्ते नदियों में भी पहुंच ही जाता है। कचरे से निकलने वाला गंदा जल भी भू-जल और नदियों को प्रदूषित करता रहता है। ऐसे में बिहार इसके लिए भी तैयार नही है। इस पर भी चुनाव के दौरान कोई बातचीत नहीं दिखाई देती।

बैठक में बताया गया कि 2,272 टन प्रतिदिन (टीपीडी) कचरा प्रतिदिन राज्य में निकलता है। इसमें से महज 1226 टन कचरा प्रतिदिन प्रोसेस किया जाता है और 112 टन कचरा प्रतिदिन लैंडफिल साइट में गिराया जाता है। 934 टन कचरा यानी करीब 50 फीसदी कचरा प्रतिदिन अब भी राज्य के लिए अनछुआ है। नदियां, तालाब, जलाशय इन कचरों का निवास स्थान बन रहे हैं।

सामूहिक प्रवाह शोधन संयंत्र (सीईटीपी) के लिए भी पांच स्थान बिहार में चुने गए हैं। यह ध्यान रखने लायक है कि स्थान ही चुने गए हैं। जमीन पर अभी कुछ उतरा नहीं है। वहीं, पूर्वी और पश्चमी चंपारण में बहने वाली सिकरहना नदी को मॉडल नदी बनाने के लिए चुना गया है, जिसका जल नहाने लायक बनाया जाएगा। बैठक में बिहार प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के प्रतिनिधि इस बात को छुपा ले गए कि आखिर अभी तक क्यों नहीं बनाया गया।

बैठक में गंगा नदी में प्रदूषण की रोकथाम के लिए बहुत उत्सुकता दिखाई गई, ऐसा लगा कि जो काम अभी तक नहीं किए जा सके हैं, वे बस चुनाव के कारण रुक गए हैं और उन्हें चुनाव खत्म होते ही बहुत जल्द पूरा कर दिया जाएगा। बहरहाल एनएमसीजी ने बिहार के अधिकारी की उत्सुकता पर विराम लगाया और कहा कि फिलहाल पेपर का कामकाज जारी रखिए, ताकि आचार संहिता बाद नवंबर से काम किया जा सके।

गंगा सफाई के लिए निजी हितधारकों से फंड जुटाने के लिए अदालतें जोर डाल रही हैं, जबकि गंगा के लिए बजट के सही प्रयोग पर हर साल सवाल उठते रहते हैं।

बैठक के अंत में जलशक्ति मंत्रालय के सचिव को यह अच्छा नहीं लगा या बातचीत ही निस्सार लगी कि राज्यों के वरिष्ठ अधिकारी ही स्थिति बताने और सुनने के लिए इसमें शामिल नहीं हैं। उन्होंने जोर देकर कहा कि बैठक में वरिष्ठ अधिकारी जरूर आने चाहिए, और बैठक की शुरुआत में ही सभी राज्यों को यह चेताया गया कि कम से कम ठोस कचरा प्रबंधन, औद्योगिक प्रदूषण और खतरनाक कचरा, जैविक कचरा आदि के प्रबंधन को लेकर ठोस आंकड़े जुटाए जाने चाहिए। यानी आंकड़ों की कमी अब भी बनी हुई है।

दरअसल यह एक राज्य की बात नहीं है बल्कि उत्तराखंड और फिर उत्तर प्रदेश के रास्ते बिहार, झारखंड, पश्चिम-बंगाल और बंगाल की खाड़ी में जाकर मिल जाने वाली गंगा नदी के लिए फिक्र शायद ही कोई राज्य कर रहा है। 1985 में देश की सर्वोच्च अदालत की चौखट पार करके न्यायमूर्तियों के सामने पहुंची जनहित याचिका में जो समस्याएं गिनवाई गईं थी, उसे 2014 और 2017 के बाद से नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल (एनजीटी) में करीब हर तीसरे-चौथे महीने गिनवाया जा रहा है। समस्या खत्म होने के बजाए बढ़ती जा रही हैं। ज्यों-ज्यों दवा हो रही है मर्ज बढ़ता जा रहा है।

वहीं, 13 अगस्त, 2020 को एनजीटी ने गौर किया कि उत्तराखंड, यूपी, बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल के मुख्य सचिवों और निगरानी समितियों को आदेश दिया गया था कि वे समय-समय पर बैठक करके गंगा की स्थिति और जल गुणवत्ता में सुधार लाए जाने वाले कदमों का जायजा लिया करें। लेकिन बिहार, झारखंड और पश्चिम बंगाल की स्थिति ही साफ नहीं है। और पीठ ने यह कहा कि राज्यों के मुख्य सचिव कोई बैठक कर रहे हैं यह कहना थोड़ा मुश्किल है। इसे जरूर सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

यह भी पीठ ने गौर किया कि राज्यों की नुमाइंदगी अदालत में अपना पक्ष रखने के लिए भी नहीं आती है, जिससे कई अहम जानकारियों की सत्यता जांचना बेहद जटिल हो जाता है। अदालत को गुस्सा नहीं आया, बल्कि उन्होंने कहा कि हम यह उम्मीद करते हैं कि राज्य इस मामले की उपेक्षा करने के बजाए इसे गंभीरता से लेंगे। बैठक को बेहद जरूरी बताते हुए अदालत ने कहा कि गंगा के पुनरुद्धार का बेहतर से बेहतर तरीका आजमाया जाना चाहिए। यहां तक कि गंगा सफाई के लिए कई हितधारकों से फंड जुटाए जाने की कोशिश भी की जानी चाहिए।

पीठ ने एनएमसीजी और जलशक्ति मंत्रालय को कहा है कि वे राज्यों के मुख्य सचिव को आगाह करें कि न सिर्फ समस्याओं के समाधान के स्पष्ट बिंदु वाली कार्ययोजना बनाई जाए बल्कि उचित कदम भी उठाए जाएं। याचिकाकर्ता एमसी मेहता के मामले में गंगा से जुड़ा यह मुद्दा अब भी जारी है। सिर्फ कार्ययोजनाओं में वर्षों खर्च हो गए हैं। एनजीटी ने फिर से एनएमसीजी और संबंधित राज्यों को 25 सितंबर को एक अन्य बैठक करने के लिए कहा था लेकिन गंगा राज्यों की यह बैठक अभी तक हो नहीं पाई है।

फिलहाल बिहार चुनाव में है और अन्य राज्य वित्तीय गतिविधियों को बढाने में सक्रिय हैं। एनजीटी इन सारे प्रश्नों पर 8 फरवरी, 2021 को सुनवाई करेगा। इतनी लंबी तारीखें गंगा की सफाई के मामले में बीत वर्ष से लग रही हैं और सकारात्मक नतीजे दिखाई नहीं दे रहे।

कोविड-19 के दौरान 25 मार्च से 08 जून, 2020 तक लंबे लॉकडाउन में कुछ तस्वीरों को देखकर गंगा की सफाई का शोर मचा था, उस वक्त डाउन टू अर्थ ने रिपोर्ट में बताया था कि निगरानी और नमूनों की जाँच व आंकड़ों को जुटाए बिना यह कहना मुश्किल होगा। बहरहाल हाल ही में सीपीसीबी ने बताया है कि लॉकडाउन के दौरान गंगा की जलगुणवत्ता में कोई खास सुधार नहीं हुआ।

सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरमेंट
41, तुगलकाबाद इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली 110062
फोन नंबर : 91-11-29955124, 29955125, 40616000
फैक्स : 91-11-29955879
वेबसाइट : www.cseindia.org